स्वस्ति पन्था

ISSN 2347-4998 SWASTI PANTHAH

महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200 वीं जयन्ती

संयुक्त विशेषांक मार्च-अप्रैल 2024

आर्यविरक्त (वानप्रस्थ + संन्यास) आश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार (उत्तराखण्ड)

आर्य नेता, आर्य वानप्रस्थाश्रम के संस्थापक

महात्मा नारायण स्वामी
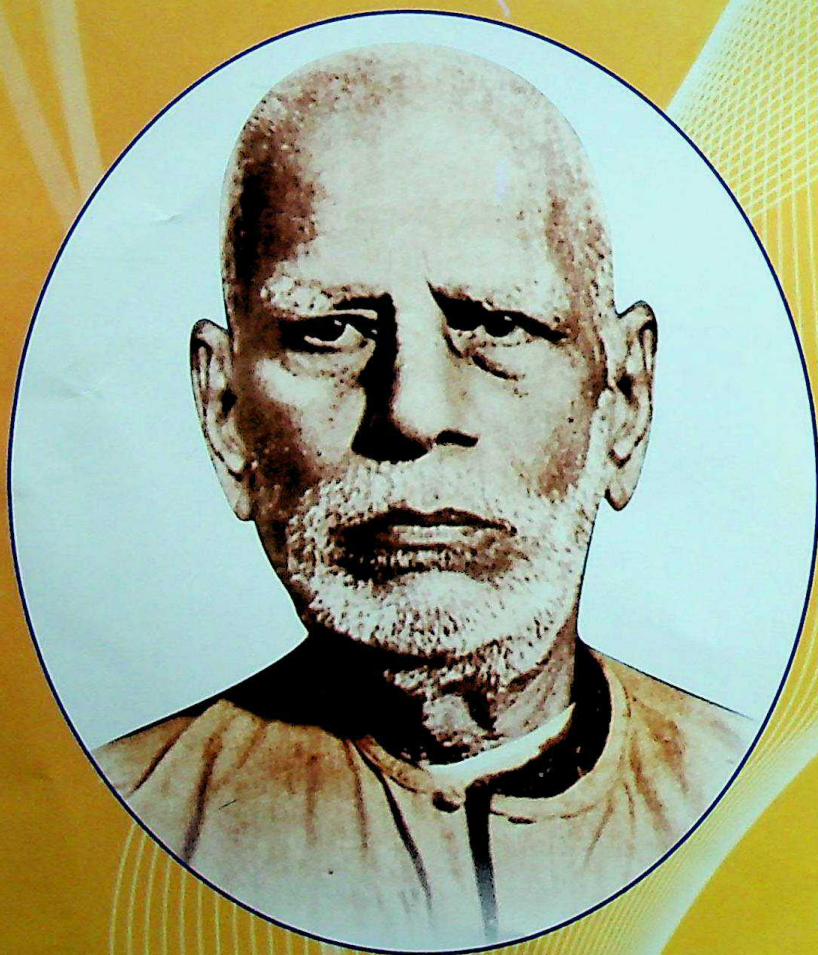
दर्शन योग महाविद्यालय

(वैदिक दर्शन अध्यापन एवं ध्यान योग प्रशिक्षण का आदर्श संस्थान)

आर्यवन, रोजड़, पत्रालय-सागपुर, जिला-साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७

Darshan Yog Mahavidyalaya

(Unique & Ideal Educational Institution for Vedic Darshan & Meditation)

Aryavan, Rojad, Post- Sagpur, Dist- Sabarkantha, (Gujarat) PIN : 383 307

Phone : +91-2770-287418, 287518 • **Mob** : +91-9409415011, 9409415017
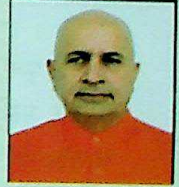
शुभकामनाएँ और आशीर्वाद

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जन्म जयंती के उपलक्ष्य में वानप्रस्थ आश्रम ज्वाला पुर का "स्वस्ति पंथा" 'मासिक' पत्र अपना एक विशेषांक प्रकाशित करने जा रहा है, यह बड़ा हर्ष का विषय है ।

जहाँ वेद है, वहाँ धर्म है। जहाँ धर्म है, वहाँ सुख है। जहाँ वेद नहीं, वहाँ वेदना है। वहां पीड़ा, अन्याय, अत्याचार व शोषण आदि पाप कर्म होते हैं और वहां अनेक प्रकार के दुख भोगने पड़ते हैं। अतः वेदों का प्रचार-प्रसार करना अत्यंत ही आवश्यक कार्य है।

महर्षि दयानंद सरस्वती जी ने विश्व भर में सुख शांति समृद्धि आदि की स्थापना के लिए उन वेदों के अनुसार वैदिक दार्शनिक सिद्धांत त्रैतवाद और वैदिक संस्कृति -परम्परा -सभ्यता -नीति रीति -जिसे वर्णाश्रम के नाम से जाना जाता है, उसका प्रचार किया। यही विश्व कल्याण का आधार है।

ऐसे वेदों के महान प्रचारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के 200वें जन्म जयंती वर्ष के अवसर पर पत्रिका का विशेषांक प्रकाशित करना बहुत ही उत्तम कार्य है।

डॉक्टर सुरेन्द्र कुमार जी शर्मा लंबे समय से "स्वस्ति पंथा" 'मासिक' जैसी आर्य पत्रिका का सफल संपादन संचालन वितरण आदि कर रहे हैं। उनके विशेष अनुभव के आधार पर यह विशेषांक तैयार हो रहा है।

इस विशेषांक की सफलता के लिए मैं डॉक्टर सुरेन्द्र कुमार जी शर्मा के स्वयं के तथा परिवार जनों और सहयोगियों के उत्तम स्वास्थ्य और दीर्घायु की कामना करते हुए उन्हें इस अवसर पर अनेक शुभकामनाएँ और आशीर्वाद प्रदान करता हूँ।

सभी सज्जन इस विशेषांक का स्वाध्याय पूरी श्रद्धा के साथ करें, इससे लाभ उठाएं और अपने जीवन का कल्याण करें।

सबका शुभचिंतक

विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक
निदेशक

दिनांक-21/12/2023
मार्गशीर्ष शु.09/2080

Email : darshanyog@gmail.com • Website : www.darshanyog.org

Youtube : darshanyog2009 • Facebook / Orkut / Skype : darshanyog

पतंजलि विश्वविद्यालय
University of Patanjali

डॉ. महावीर अग्रवाल
प्रति-कुलपति

Established by Uttarakhand State Legislature Under the University Of Patanjali Act No. 4, Year 2006 & Recognized by UGC

शुभकामना सन्देश

पूज्य महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा स्थापित आर्य विरक्त (वानप्रस्थ+संन्यास) आश्रम निरन्तर महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा निर्दिष्ट वैदिक परम्पराओं का पालन करते हुए साधना, सत्संग और सेवा का एक अनुपम धाम बना हुआ है। आश्रमवासी साधक एवं साधिका माताएं आध्यात्मिक जीवन जीते हुए मानव जीवन को सफल बना रहे हैं, और दीर्घायु प्राप्त कर रहे हैं।

यह अत्यन्त हर्ष का विषय है कि आश्रम महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जयन्ती के उपलक्ष्य में स्वस्ति पन्था पत्रिका का ''महर्षि दयानन्द विशेषांक'' प्रकाशित कर रहा है। इसमें देश के उच्चकोटि के आर्य विद्वानों एवं विदुषियों के विचार प्रकाशित होंगे।

इस अनुकरणीय, प्रशंसनीय कार्य के लिए आश्रम के प्रधान माननीय आचार्य डॉ. रामकृष्ण शास्त्री जी, सम्पादक माननीय डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा जी तथा समस्त आश्रमवासियों को हार्दिक शुभकामनाएं प्रेषित करता हूं। यह आश्रम और इसकी पत्रिका 'स्वस्ति पन्था' समाज का मार्गदर्शन करते रहें, यही कामना है।

मंगलाभिलाषी

डॉ. महावीर
प्रति-कुलपति, पतंजलि विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
पूर्व कुलपति, उत्तराखण्ड संस्कृत विश्वविद्यालय, हरिद्वार।
पूर्व आचार्य एवं उपकुलपति, गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार।

Camp Office: Patanjali Yogpeeth-I, Delhi-Haridwar National Highway, Near Bahadrabad, Haridwar, Pin-249405, Uttarakhand
Res. : Vedalok, 22, Nand Vihar, P.O.-Gurukul Kangri, Haridwar, Pin-249404, Uttarakhand
Ph. : 01334-273000, **Mob. :** +91-9719004452, 9412918949, **E-mail :** mahavir_gkv@yahoo.co.in, ...@uop.edu.in, **Website :** www.uop.edu.in

॥ ओ३म् ॥

॥ श्रद्धयाग्निः समिध्यते ॥ (ऋ० १०.१५१.१)

गुरुकुल काङ्गड़ी (समविश्वविद्यालय) हरिद्वार

(यू०जी०सी० एक्ट 1956 के सेक्शन 3 के अन्तर्गत समविश्वविद्यालय)

Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

(Deemed to be University U/s 3 of UGC Act. 1956)

प्रो० सोमदेव शतांशु
कुलपति (कार्यवाहक)

Prof. Somdev Shatanshu
Vice-Chancellor (Officiating)

क्रमाङ्क/Ref. No. ......1-2/कु०का०/वा०पत्र०/

दिनाङ्क/Date ......02.01.2024.......

शुभकामना सन्देश

युगप्रवर्त्तक वेदोद्धारक महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयन्ती के अवसर पर आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर, हरिद्वार **स्वस्ति पन्था** का **'महर्षि दयानन्द विशेषांक'** प्रकाशित करने जा रहा है, यह अत्यन्त प्रसन्नता का विषय है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का सम्पूर्ण जीवन असत्य मत मतान्तरों, अन्धविश्वास, कुरीति एवं पाखण्ड को दूर कर विश्वमानवता के लिये सर्वश्रेयस्कारक वैदिक ज्ञान-विज्ञान एवं संस्कृति-सभ्यता के प्रसार में समर्पित हुआ।

सामाजिक समरसता एवं मानव जीवन के सर्वविध कल्याण के लिये महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने वैदिक वर्णाश्रम व्यवस्था का भी पुनरुद्धार किया। वैदिक आश्रम व्यवस्था के प्रचार प्रसार में आर्य वानप्रस्थ आश्रम ज्वालापुर की महत्त्वपूर्ण भूमिका है। आश्रम द्वारा प्रकाश्यमान स्वस्ति पन्था पत्रिका का उक्त विशेषाङ्क महर्षि के दिव्य सन्देशों को जन-जन तक पहुँचाकर मानवजाति को स्वस्तिपन्था के मार्ग पर अग्रसर कराने में समर्थ हो, परमात्मा से ऐसी प्रार्थना है।

मैं स्वस्ति पन्था के सम्पादक एवं प्रकाशक मण्डल को इस श्रेष्ठ कार्य के लिए हार्दिक शुभकामनाएं अर्पित करता हूँ।

(प्रो. सोमदेव शतांशु)
कुलपति

सेवा में,

सम्मान्या लतिका आर्या
मन्त्री, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार

पो०ऑ०-गुरुकुल काङ्गड़ी, हरिद्वार-249404, उत्तराखण्ड (भारत) | P.O. Gurukula Kangri, Haridwar-249404, Uttarakhand (INDIA)
Tel.: +91-7300761329 (O), E-Mail: vcoffice@gkv.ac.in, somdev@gkv.ac.in Website: www.gkv.ac.in

प्रो. दिनेशचन्द्रः शास्त्री
कुलपतिः

Prof. Dinesh Chandra Shastri
Vice Chancellor

उत्तराखण्डसंस्कृतविश्वविद्यालय
हरिद्वार-देहली-राष्ट्रीयराजमार्गः
बहादराबादः, हरिद्वारम्-249402 (उत्तराखण्डः)
सचलदूरभाषः/M : 9410192541
ई-मेलसङ्केतः/E-mail : vc@usvv.ac.in
अन्तर्जालम्/Website : www.usvv.ac.in
Haridwar-Delhi-National Highway
Bahadrabad, Haridwar-249402 (Uttarakhand)

पत्रांक 1924/कुलपति पट
दिनांक 12-12-2023

प्रिय शर्मा जी !
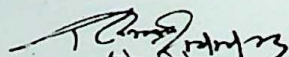
सादर अभिवादन।

आप द्वारा प्रेषित आर्य वानप्रस्थ आश्रम की मासिक पत्रिका "स्वस्तिपन्था" के विशेषांक हेतु शुभकामना सन्देश देने सम्बन्धी पत्र प्राप्त हुआ, एतदर्थ धन्यवाद।

मुझे यह जानकर अत्यन्त हर्ष हो रहा है सम्पूर्ण भारत वर्ष में आर्य समाज के प्रवर्तक महर्षि दयानन्द सरस्वती की 200वीं जयन्ती आयोजित की जा रही है, जिसके अन्तर्गत अनेक सांस्कृतिक कार्यक्रमों का आयोजन किया जा रह है, साथ ही इस अवसर पर महर्षि दयानन्द की पुण्यस्मृति में "स्वस्तिपन्था" पत्रिका का भी प्रकाशन किया जा रहा है।

आर्य वानप्रस्थ आश्रम द्वारा प्रकाशित होने वाली यह पत्रिका आमजन के हृदय को स्पर्श करते हुए जन–जागरण में महत्वपूर्ण भूमिका निभायेगी, ऐसा मेरा दृढ़ विश्वास है। पत्रिका में प्रकाशित सामग्री प्रेरणादायक होने के साथ–साथ समाज के लिए किये गये कार्यों का भी दर्पण है। पत्रिका के सफल प्रकाशन हेतु मैं संस्था से जुडे हुए सभी पदाधिकारियों को हार्दिक शुभकामनाएँ प्रेषित करता हूँ।

शुभम्,

(प्रो० दिनेशचन्द्र शास्त्री)
कुलपति

प्रतिष्ठा में,

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
सम्पादक
स्वस्ति पन्था कार्यालय
आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर (हरिद्वार)।

साधक मंडल-शाखा नं.-1

साधिका मंडल-शाखा नं.-1
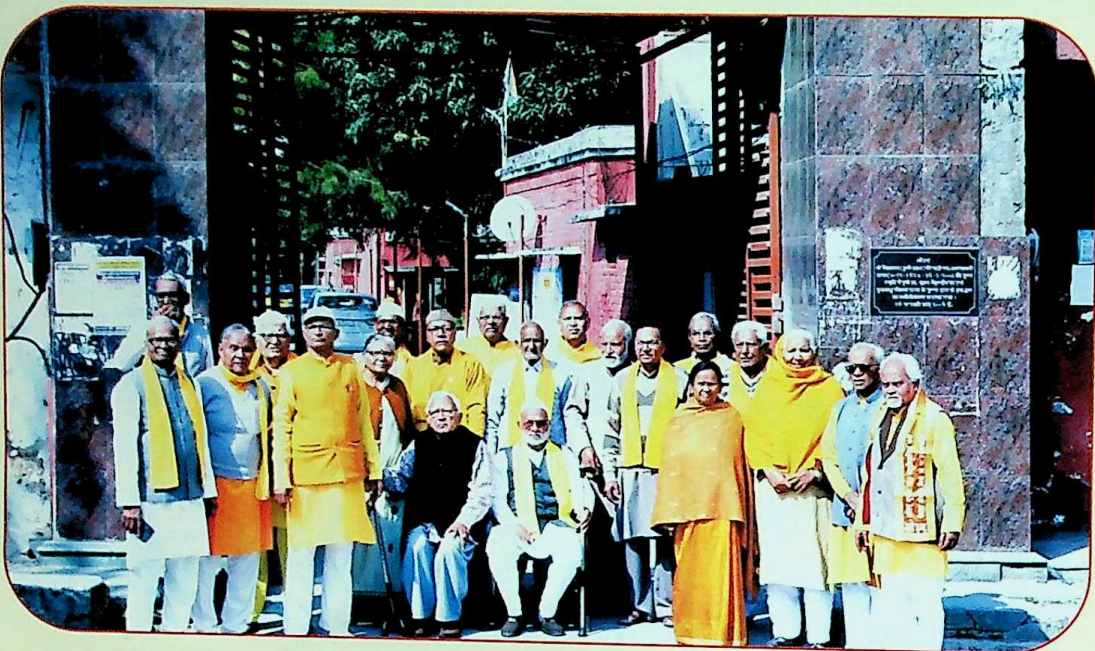
साधक मंडल-शाखा नं.-2

साधिका मंडल-शाखा नं.-2

साधक मंडल-मुख्य शाखा

साधिका मंडल-मुख्य शाखा

आश्रम औषधालय डॉक्टर गण एवं सहयोगी

यज्ञशाला व्यवस्था सहयोगी

ध्यान कक्ष साधक-साधिका मंडल

स्वस्ति पंथा (पत्रिका)
कार्यालय
संपादक मंडल

वैदिक पाठशाला
के
सदस्यगण

महर्षि दयानन्द
स्मारक के
संयोजक एवं
ब्रह्मचारी

यज्ञीय ब्रह्मा
(ऋत्विग्)
साधक मंडल

यज्ञीय ब्रह्मा
(ऋत्विग्)
साधिका मंडल

आश्रम संन्यस्त
मंडल
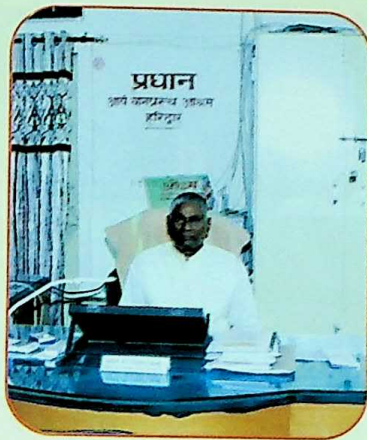
कार्यालय प्रधान-आचार्य
डॉ. रामकृष्ण शास्त्री

आश्रम मंत्री
श्रीमती लतिका आर्या

आश्रम कार्यालय
के पदाधिकारी

आश्रम
कार्यकारिणी
सदस्य

आश्रम मंत्री, उपमंत्री
एवं कार्यालय कर्मचारी

स्वागत कक्ष की संयोजिका
एवं
कर्मचारी
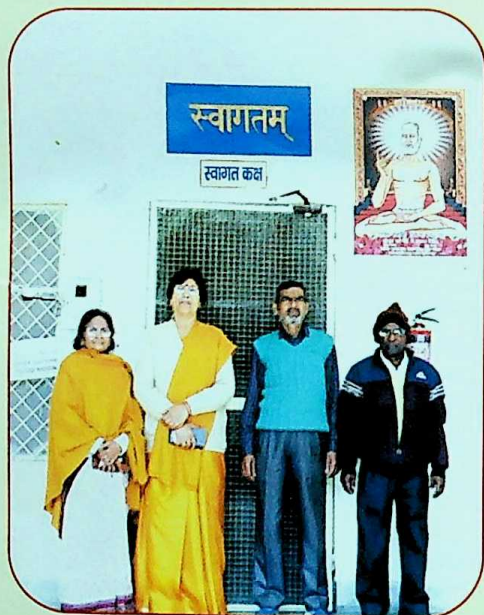
कोषागार
संयोजक

नवनिर्मित
सत्संग भवन

आश्रमस्थ
पूर्व प्रधान मंडल
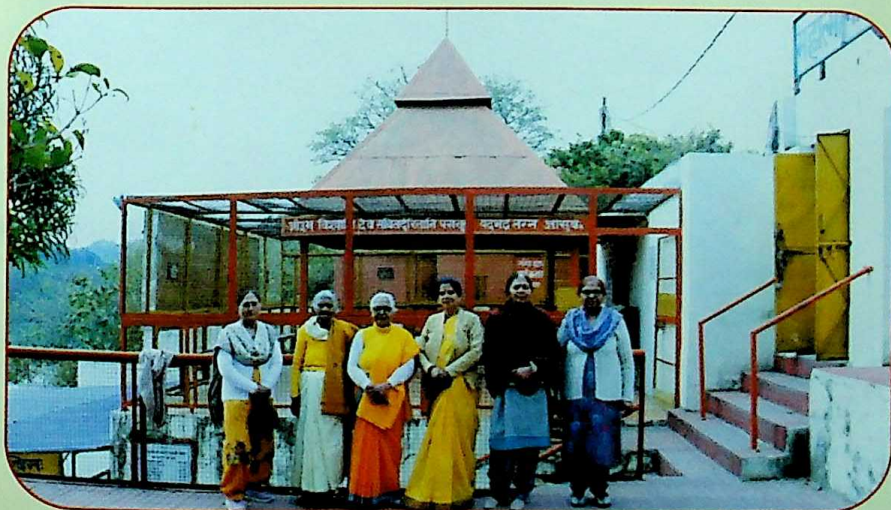
गंगा घाट
यज्ञशाला
मातृ शक्ति मंडल

स्वच्छता कार्यालय की संयोजिका एवं कर्मचारी

फुलवाड़ी विभाग की संयोजिका एवं कर्मचारी

रसोई गैस विभाग के संयोजक

प्रवचन संयोजक

पुस्तकालय संयोजिका

वस्तु भण्डार की संयोजिका एवं कर्मचारी
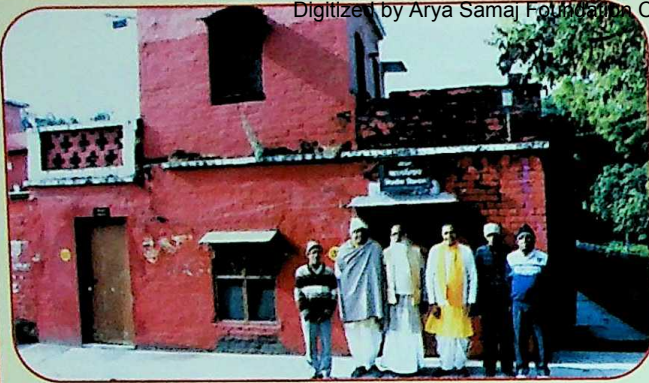
निर्माण विभाग के संयोजक
एवं कर्मचारी
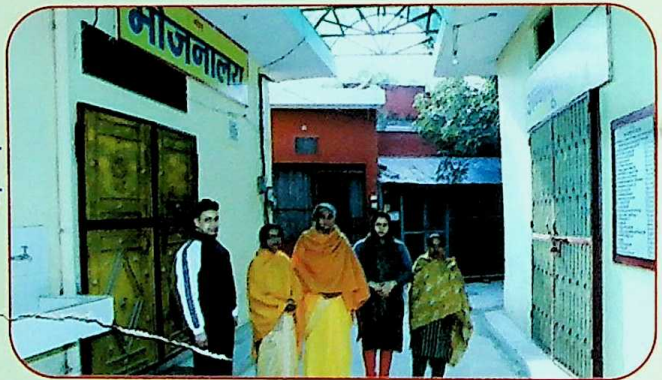
भोजनालय की संयोजिका
एवं कर्मचारी

सुरक्षा विभाग के संयोजक
एवं कर्मचारी

विद्युत् विभाग के
संयोजक एवं कर्मचारी

जल-कल विभाग के संयोजक

विक्रय केन्द्र के संयोजक एवं कर्मचारी

वाहन व्यवस्था के संयोजक एवं कर्मचारी
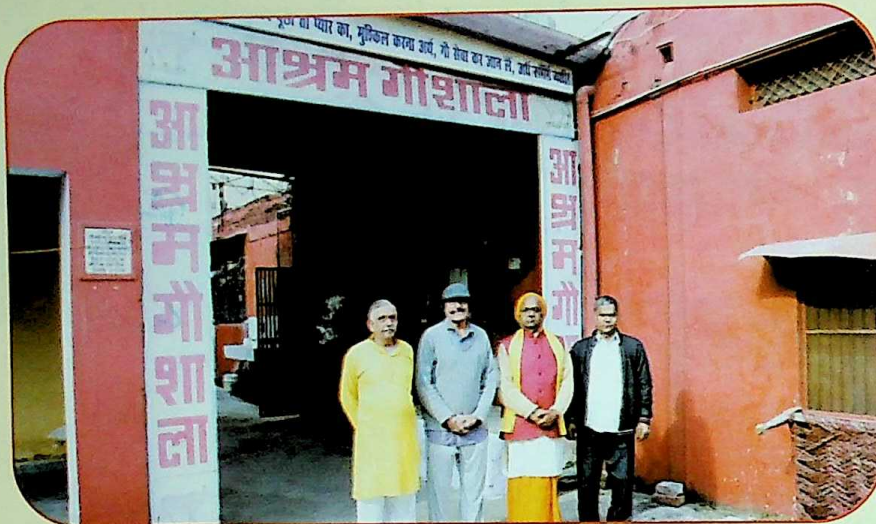
गौशाला के संयोजक एवं कर्मचारी

यज्ञशाला का बाहरी दृश्य

माता लीलावतीआर्य भिक्षुउपदेशकअतिथि गृह

माता लीलावती अतिथि गृह

नवनिर्मित रामकृष्ण यज्ञशाला का उद्‌घाटन

यज्ञीय कार्यक्रम का दृश्य
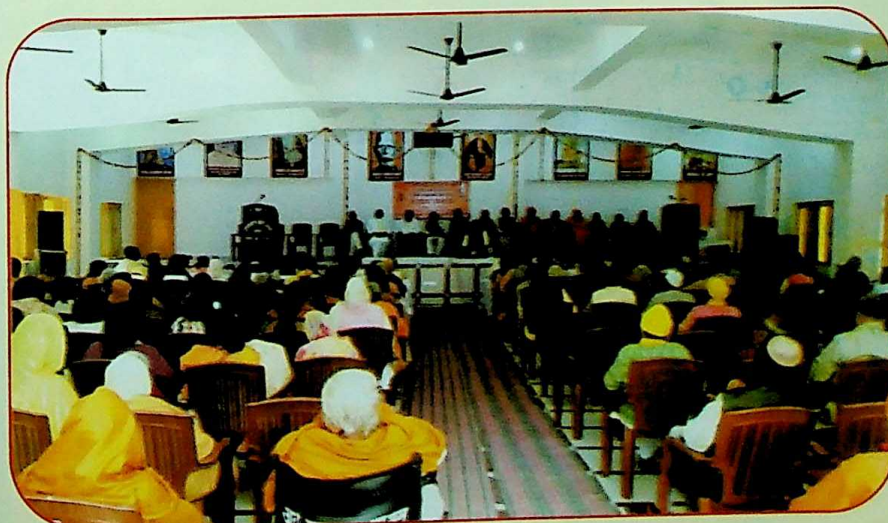
सत्संग भवन

नवनिर्मित सत्संग भवन का उद्‌घाटन

दयानन्द स्मारक में ऋषिबोधोत्सव

ऋषि बोधोत्सव पर विशेष यज्ञ में सम्मिलित साधक-साधिकाएं

ऋषि बोधोत्सव कार्यक्रम में भाग लेने हेतु दयानन्द स्मारक पर पहुँचे साधक-साधिकाएँ
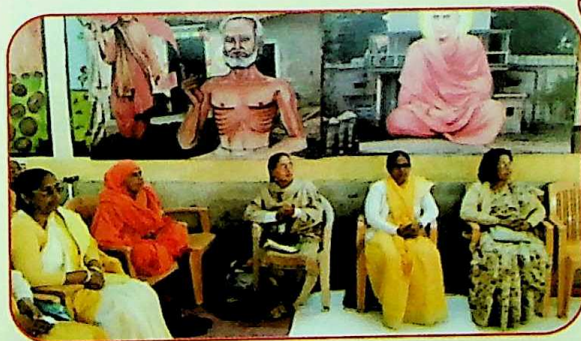
ऋषि बोधोत्सव पर कार्यक्रम में सम्मिलित आश्रम मंत्री, उपमंत्री एवं साधिकाएं

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के 200वें जन्मोत्सव पर 11 कुंडीय महायज्ञ
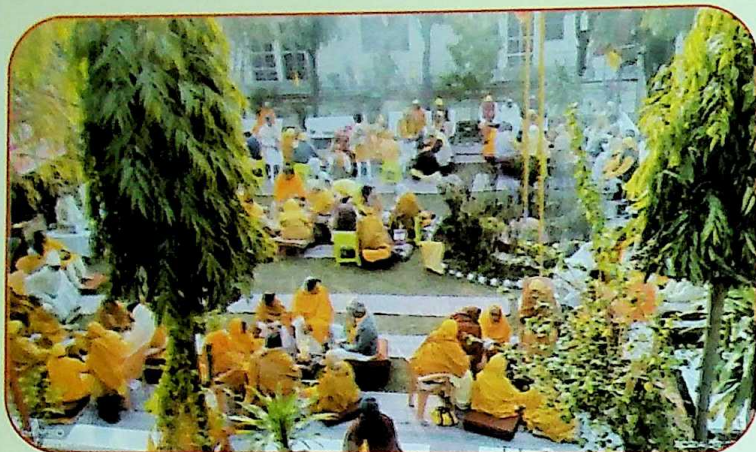
महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के 200वें जन्मोत्सव पर 11 कुंडीय महायज्ञ में सम्मिलित सभी आश्रमवासी

श्रीराम अमृत महोत्सव 22 जनवरी 2024 पर भाग लेने हेतु आए साधक-साधिकाएं

श्रीराम अमृत महोत्सव 22 जनवरी 2024 पर दीपक प्रज्वलित करते हुए आश्रम प्रधान एवं मंत्री तथा साधक साधिकाएं

शुभ दीपावली कार्यक्रम के अवसर पर गुरु विरजानन्द उद्यान में उपस्थित सभी आश्रमवासी

गणतन्त्र दिवस 26 जनवरी 2024 पर राष्ट्रीय ध्वज के सम्मान हेतु उपस्थित आश्रम प्रधान, मंत्री एवं पदाधिकारी
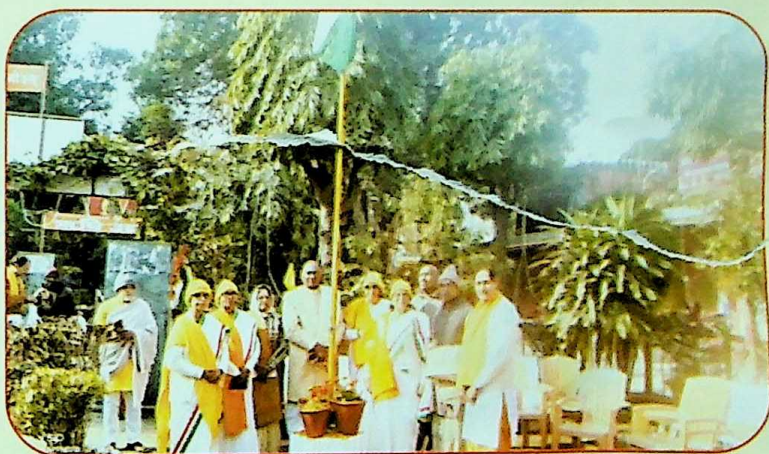
गणतन्त्र दिवस पर आश्रम मंत्री श्रीमती लतिका आर्या द्वारा उद्बोधन

आश्रम के अधिकारी गण

श्रीराम अमृत महोत्सव के अवसर पर दीप प्रज्वलन

दयानन्द स्मारक में ऋषि बोधोत्सव के अवसर पर ध्वजारोहण
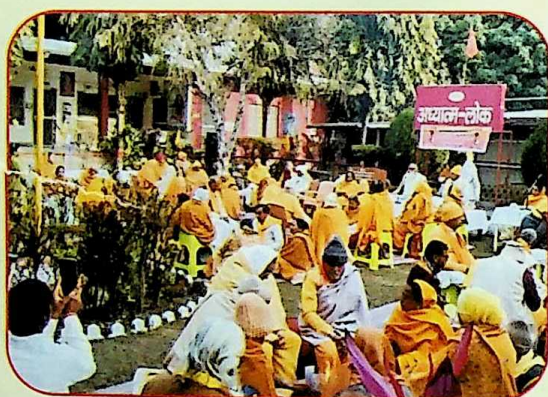
11 कुण्डीय यज्ञ, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की 200वीं जयन्ती पर

गणतन्त्र दिवस पर आश्रम प्रधान आचार्य डॉ. रामकृष्ण शास्त्री जी द्वारा संदेश देते हुए

श्रीराम अमृत महोत्सव का एक दृश्य

ISSN-2347-4998

॥ स्वस्ति पन्था ॥

पंजीयन सं० UPHIN/2000/2305

वर्ष २६, अंक १५६-१५७

मार्च-अप्रैल २०२४-फाल्गुन-चैत्र

वि.सं.-२०८० महर्षि दयानन्दाब्द १९९-२००

:- संरक्षक :-

आचार्य डॉ० रामकृष्ण शास्त्री

आश्रम प्रधान, मो०-९४१५०२७५९९

:- आद्य सम्पादक:-

स्व. आचार्य धर्मवीर विद्यालंकार

:- सम्पादक:-

डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

मो०-९६३९१४९९९५, ६३५११२६५५६

:- सहयोगी सम्पादक मंडल:-

श्री सदानन्द आर्य

श्रीमती शोभा रानी छाबड़ा

श्रीमती रश्मि गुप्ता

: मीडिया प्रभारी:

श्री मधुसूदन आर्य

:- प्रकाशक:-

श्रीमती लतिका गोयल (मंत्री)

आर्य विरक्त (वानप्रस्थ + संन्यास) आश्रम

ज्वालापुर (हरिद्वार) उत्तराखंड

पिन-२४९४०७

चलभाष-७८९५४१६०१९

www.aryavanprasthashram.com

:-मुद्रक:-

किरण ऑफसैट प्रिन्टिंग प्रेस

विष्णु गार्डन, कनखल, हरिद्वार

मो० ९८३७००७२२२

सदस्यता शुल्क

एकप्रति	रु० १५.००
वार्षिक स्थानीय	रु० १५०.००
डाक द्वारा	रु० १७५.००
आजीवन	रु० २०००.००

ओ३म्

प्रवेश द्वार

भाव सृष्टि | स्रष्टा | सृष्टि क्रम

1. समर्पणम् 02
2. श्री मद्दयानन्दः नमोऽस्तु ते सम्पादकीय 03
3. अथ वैदिकी प्रार्थना चिन्तनं च कार्यालय प्रस्तुति 04
4. स्वतन्त्रता संग्राम के अग्रदूत
स्वामी दयानन्द सरस्वती -डॉ० सुशील कुमार त्यागी 07
5. सर्वतोमुखी क्रांति के अग्रदूत महर्षि दयानन्द डॉ० शिव कुमार शास्त्री 10
6. महर्षि दयानन्द की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय -श्रीमती रश्मि गुप्ता 13
7. महर्षि दयानन्द की दृष्टि में नारी सशक्तिकरण श्रीमती मनीषा विमल 16
8. महर्षि दयानन्द के कुछ प्रमुख शास्त्रार्थ -श्रीमती शोभारानी छाबड़ा 19
9. सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय आवश्यक क्यों? -स्वामी संकल्पदेव 23
10. महर्षि दयानन्द के बारे में पाश्चात्य विद्वानों के विचार -- सदानन्द आर्य 24
11. महर्षि दयानन्द सरस्वती: एक विलक्षण व्यक्तित्व -डॉ० विनोदचन्द्र वेदालंकार 26
12. महर्षि दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई -डॉ० प्रशस्य मित्र शास्त्री 33
13. प्रभु तुम कितने महान हो? कार्यालय प्रस्तुति 34
14. दयानन्द ऋषिराज महान -श्री राधेश्याम आर्य विद्या वाचस्पति 35
15. आर्य थे दयानन्द आचार्य हरिसिंह त्यागी 36
16. दीपमाला का नायक ऋषि दयानन्द स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती 37
17. आश्रम शताब्दी की ओर बढ़ते कदम... -कार्यालय प्रस्तुति 38
18. वैदिक वाङ्मय में माया का विवेचन -डॉ० प्रेमप्रकाश 41
19. हमारे आदर्श मर्यादा पुरुषोत्तम राम -छात्र परिचर्चा 44
20. पुराणोक्त देवताओं की अवधारणा -डॉ० ज्वलन्त कुमार शास्त्री 48
21. स्वतंत्र भारत की संकल्पना के प्रतीक:
महात्मा नारायण स्वामी --डॉ० अमित कुमार चौहान 50
22. मेरी रोजड़ यात्रा - डॉ० सुरेन्द्र कुमार शर्मा 53
23. जेल डायरी के कुछ बीमार पन्ने - कार्यालय प्रस्तुति 58
24. आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी ज्ञानेश्वरार्य 60
25. कर्मयोगी महात्मा नारायण स्वामी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व - डॉ० देव 62
26. आश्रम समाचार -कार्यालय प्रस्तुति 69
27. समर्पणम् ,, ,, - 70
28. छायाचित्र जगत्

दान/सदस्यता शुल्क जमा करने हेतु खाता संख्या:-
Arya Vanprasth Ashram **Bank's Name: Punjab National Bank**
A/c No.: 1064000100000017 **IFSC Code: PUNB0106400**
Branch Name: Punjab National Bank, AVPA, Jwalapur (Haridwar)

ध्यातव्य:- लेखक अपने आलेखों के प्रति स्वयं उत्तरदायी होंगे।
न्यायालय प्रक्रिया क्षेत्र, केवल-हरिद्वार।
संपादक को आवश्यकता या परिस्थिति के अनुसार आलेख को संक्षिप्त या संशोधित करने का पूर्ण अधिकार होगा।

निवेदन:- सुधी लेखकों से आलेख एवं कविताएं आमंत्रित की जाती हैं।
आलेख वैदिक विचारधारा के अनुरूप, मौलिक सुपाठ्य तथा कागज के एक ओर लिखे गए हों।
कृपया अपने मनीआर्डर, चैक, या बैंक ड्राफ्ट मंत्री, आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर (हरिद्वार) के पते पर ही भेजें।

समर्पणम्

देव दयानन्द तुम्हें समर्पित यह विशेषांक

वैदिक धर्म ध्वज वाहक, शास्त्रार्थ महारथी, वेद प्रचारक, राष्ट्र उन्नायक अंधविश्वास, कुरीति संहारक, कष्ट जयी, नारी शिक्षा प्रसारक, स्वातन्त्र्य उद्घोषक, साधना प्रतिमूर्ति, गोसेवक, दीन दलितोद्धारक, जन-मानस की आस-विश्वास, अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश के रचयिता गुरुकुलीय प्रणाली के पोषक, आर्य समाज के प्रचारक तथा संस्थापक,

विश्व वन्द्य, दिव्य, देव दयानन्द,

तुम्हारी 200 वीं पावन जयन्ती पर भुला दिये हमने अब तक के, लिखे-अनलिखे सारे गतांक केवल एकमात्र तुम्हें समर्पित आश्रम पत्रिका 'स्वस्तिपंथा' का भव्य-दिव्य विशेषांक ।

सम्पादकीय

श्री मद्दयानन्दः नमोस्तु ते

जब हम आर्य समाज के संस्थापक, स्वातंत्रता संग्राम के सूत्रधार, दलितोद्धारक, नारी उद्धारक, सद् ग्रन्थों के प्रणेता, आर्य भाषा (हिन्दी) के समर्थक, शास्त्रार्थ महारथी, महर्षि दयानन्द के प्रति उनकी 200वीं जयन्ती पर कृतज्ञता के दो शब्द प्रकट करते हैं तो शब्द परस्पर उलझ जाते हैं और अर्थ अपनी अपूर्णता के कारण बिखर जाते हैं। ऐसी विषम परिस्थिति में मुख से स्वतः ही एक ही अपूर्ण मंत्रात्मक वाक्य उद्घोषित हो जाता है- **'श्री मद्दयानन्दः नमोऽस्तु ते।'**

उक्त मंत्रात्मक वाक्य में नयनाश्रु हैं और हृदय की संवेदनायें भी। प्रार्थना और कृतज्ञता के शब्द हैं और महर्षि के महान कार्यों के शब्दार्थ भी। भले ही हम इस पत्रिका का विशेषांक प्रकाशित कर रहे हैं परन्तु क्या इस विशेषांक में हम महर्षि के महान, उपकारों, उनके महान कार्यों और उनके तप-त्याग मय जीवन को समेट पायेंगे? वे आधुनिक युग के महापुरुषों में एक ऐसे भास्वर भास्कर (सूर्य) थे जिनके सम्मुख अन्य महापुरुष निष्प्रभ प्रतीत होते हैं।

मैं स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक तथा डॉ. महावीर अग्रवाल, डॉ. सोमदेव शतांशु, एवं डॉ. दिनेश चन्द्र शास्त्री तीनों कुलपतियों के प्रति आभार प्रकट करता हूँ जिन्होंने शुभकामना संदेश देकर पत्रिका की शोभा को द्विगुणित कर दिया है। पत्रिका प्रकाशन में आश्रम प्रधान आचार्य डॉ. रामकृष्ण शास्त्री के प्रति मैं धन्यवाद प्रकट करता हूँ जिनका आशीर्वाद हमें हमेशा मिलता रहा। आश्रम मंत्री बहिन लतिका का भी हमें सहयोग मिलता रहा, मैं उनके प्रति भी कृतज्ञता प्रकट करता हूँ। संपादक मंडल में मेरे सहयोगी श्री सदानन्द मौर्य, श्रीमती शोभा छावड़ा तथा श्रीमती रश्मि आर्या तीनों ने पत्रिका-प्रकृति की रचना में त्रिगुणात्मक तत्त्वों की सी भूमिका निभाई है। इनके सहयोग के बिना असहाय संपादक क्या कर सकता था। इनकी प्रशस्ति में कुछ कहना आत्मश्लाघा मात्र है।

आँवलों और अंगूरों के समान खट्टे-मीठे भाव-विचार आपकी सेवा में प्रस्तुत हैं। यदि आँवलों में खटास अनुभव हो तो संपादक मंडल को आँखें दिखायें और यदि अंगूरों में मिठास की अनुभूति हो तो इसके लिए परमात्मा के प्रति धन्यवाद प्रकट करें।

इस विशेषांक की यह विशेषता है कि हमने आश्रम में निवास करने वाले समस्त साधक-साधिकाओं, कार्यालयों के अधिकारियों तथा विभिन्न विभागों के कर्मचारियों के छायाचित्र प्रकाशित किए हैं ताकि वे आश्रम में रहते हुये छायाचित्र के माध्यम से स्वयं को देख सकें तथा उनके पारिवारिक जन भी छायाचित्र को देखकर संतुष्ट और प्रसन्न हो सकें कि हमारे माता-पिता उपयुक्त स्थान (आश्रम) में गए है। आशा है कि आपको यह विचार पसन्द आया होगा।

आपका प्रसन्नता ही हमारी सफलता है।

सुरेन्द्र कुमार शर्मा

सम्पादक

ओ३म्

अथ विशेषांक शुभारम्भः
महर्षि दयानन्द द्विशताब्दी जयन्ती समारोह

अथ वैदिकी-प्रार्थना-दर्शनं-चिन्तनं च

ऋग्वेद

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति
सूरयः, दिवीव चक्षुराततम् ।

साधना निरत तपस्वी जन विष्णु अर्थात् परम पिता के सर्वोच्च स्थान मोक्ष की ओर ध्यान केन्द्रित करते हैं।

यजुर्वेद

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

स्वर्णमय पात्र से सत्य का मुख आच्छादित है।

सामवेद

ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियम्।

सत्य की जिह्वा से मधु रस झरता रहता है।

अथर्ववेद

माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्या ।

यह भूमि मेरी माता है और मैं उसका पुत्र हूँ।

ऐतरेय ब्राह्मण

परिमितं वै भूतम् । अपरिमितं भव्यम्।

भूत (जो हो चुका है) परिमित होता है। परन्तु भविष्य अपरिमित होता है।

ईशोपनिषद्

ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किंच जगत्यां जगत् ।

ईश्वर विश्व के कण-कण में व्याप्त है। समस्त ब्रह्माण्ड उसकी आभा से आभासित है।

केनोपनिषद्

इह चेद वेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टिः।

यदि इसी जन्म में ब्रह्म को जान लिया तो सफलता है। यदि न जाना हो अत्यधिक हानि या निष्फलता है।

कठोपनिषद्

एतद्ध्येवाक्षरं ब्रह्म एतद्ध्येवाक्षरं परम्।
एतद्ध्येवाक्षरं ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्॥

यह अक्षर ही तो ब्रह्म है और यह अक्षर ही परब्रह्म है। इस अक्षर को जानकर ही जो जिस वस्तु की इच्छा करता है, उसे वही वस्तु प्राप्त होती है।

प्रश्नोपनिषद्

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ।
ऋचो यजूंसि सामानि यज्ञः क्षत्रं च ब्रह्म च॥

जैसे रथ की नाभि में अरे लगे होते हैं, ऐसे ही सब कुछ दृश्यादृश्य पदार्थ प्राण में प्रतिष्ठित हैं। ऋचाएँ, यजु, साम के मंत्र यज्ञकर्म, क्षात्रधर्म और ब्रह्म कर्म भी प्राण में प्रतिष्ठित हैं।

मुंडकोपनिषद्

एतस्माज्जायते प्राणो मनः सर्वेन्द्रियाणि च ।
खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी विश्वस्य धारिणी॥

उसी भगवान से प्राण-जीवन उत्पन्न होता है। मनोवृत्ति और सब इन्द्रियाँ भी उसी से उत्पन्न होती हैं। आकाश, वायु, अग्नि, जल और सबको धारण करने वाली पृथिवी भी।

मांडूक्योपनिषद्

सर्वं ह्येतद ब्रह्मायमात्मा ब्रह्म, सोऽयमात्मा चतुष्पात्।

यह सब ही ब्रह्म है। यह आत्मा, जो विश्व में है, ब्रह्म है। यह वह आत्मा चार पाद वाला है, उसकी चार अवस्थायें हैं।

तैत्तिरीयोपनिषद्

आचार्योऽन्तेवासिनमनुशास्ति, सत्यं वद, धर्मं चर। स्वाध्यायान् मा प्रमदः।

आचार्य शिष्य को उपदेश देता है- सत्य ही बोल, धर्म का आचरण कर, स्वाध्याय से प्रमाद न कर।

ऐतरेयोपनिषद्

ओम् । आत्मा वा इदमेक एवाग्र आसीत ।
नान्यत् किंचन मिषत्। स ईक्षत् लोकान्नु सृजा इति।

सृष्टि रचना से पहले एक ही आत्मा परमेश्वर था। और कुछ भी झपकता-हिलता नहीं था। उस परमात्मा ने इच्छा की कि लोकों को-कर्मफल-भोग के स्थानों को रचूँ।

9. प्राज्ञ-चराचर जगत् के व्यवहार को जानने वाला।

छान्दोग्योपनिषद्

एषां भूतानां पृथिवी रसः, पृथिव्या आपो रसोऽपामोषधयो रसः ओषधीनां पुरुषो रसः।

इन पाँच महाभूतों का सार पृथिवी है। पृथिवी का सार जल है। जलों का सार अन्नादि औषधियाँ हैं। औषधियों का सार पुरुष है, मनुष्य देह है।

बृहदारण्यकोपनिषद्

आत्मा वा अरे द्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यः

यह आत्मा ही देखने योग्य है, जानने योग्य है, श्रवण करने योग्य है, मनन करने योग्य है और निश्चय से ध्यान करने योग्य है।

श्वेताश्वतरोपनिषद्

तिलेषु तैलं दधनीव सर्पिरापः स्रोतः स्वरणीषु चाग्निः।

जैसे तिलों में तैल है, दही में घृत है, स्रोतों में जल के झरने में जल है और अरणियों में अग्नि है, ऐसे ही यह परमात्मा आत्मा में व्याप्त है।

पातंजल योग दर्शन

क्लेश कर्म विपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुष विशेष ईश्वरः।

क्लेश, कर्म, विपाक और आशय-इन चारों से असम्बद्ध पुरुष विशेष ही ईश्वर है।

वेदान्त दर्शन

तिलेषु तैलवत् वेदे वेदान्ताः सुप्रतिष्ठितः।

जैसे तिलों में तेल रहता है वैसे ही वेद में वेदान्त सुप्रतिष्ठित है।

न्याय दर्शन

नीयते प्राप्यते विवाक्षितार्थ सिद्धिर्येन इति न्यायः।

अर्थात् जिसके द्वारा निश्चित निष्कर्ष पर पहुँच जाय, उसे न्याय दर्शन कहते हैं।

गीता- श्रीमद् भगवत् गीता

न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः।
न कर्मफलं संयोगं स्वभावस्तु प्रवर्तते।।

परमेश्वर मनुष्य के न तो कर्तापन की, न कर्मो की और न कर्मफल के संयोग की ही रचना करते हैं किन्तु स्वभाव ही बन रहा है।

सत्यार्थ प्रकाश- 'ओम' आदि नाम सार्थक हैं-जैसे ओं खम्ब्रह्म। अवतीत्योम्, आकाशमिव व्यापकत्वात् खम्, सर्वेभ्यो बृहत्वाद् ब्रह्म, रक्षा करने से (ओम्) आकाशवत् व्यापक होने से (खम्) और सबसे बड़ा होने से (ब्रह्म) ईश्वर का नाम है। (प्रथम समुल्लास)

★ ★ ★

10. मित्र - सबसे स्नेह व प्रीति करने वाला। | 11. वरुण सर्वश्रेष्ठ वरणीय।

महर्षि आलेख उद्यान

स्वतंत्रता-संग्राम के अग्रदूत स्वामी दयानन्द सरस्वती

-डॉ0 सुशील कुमार त्यागी 'अमित'

स्वतंत्रता संग्राम के अग्रदूत, महान वैचारिक क्रांतिकारी एवं आर्य संन्यासी स्वामी दयानंद सरस्वती का स्वतंत्रता संग्राम में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वे राष्ट्रीय स्वाधीनता के प्रबल पक्षधर थे। भारत पर उस समय जिस प्रकार विदेशी शासन स्थापित था, उससे वे उद्वेग अनुभव किया करते थे। स्वामी दयानंद सरस्वती ने अपने अमर ग्रंथ 'सत्यार्थ प्रकाश' में लिखा है-''अब अभाग्योदय से और आर्यों के आलस्य, प्रमाद, परस्पर के विरोध से अन्य देशों के राज्य करने की तो कथा ही क्या कहनी किंतु आर्यावर्त में भी आर्यों का अखंड, स्वतंत्र, स्वाधीन, निर्भय राज्य इस समय नहीं हैं। जो कुछ है सो भी विदेशियों के पदाक्रान्त हो रहा है। कुछ थोड़े राजा स्वतंत्र हैं। दुर्दिन जब आता है, तब देशवासियों को अनेक प्रकार का दुःख भोगना पड़ता है। **कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है।** अथवा मतमतान्तर के आग्रह रहित अपने और पराये का पक्षपात शून्य, प्रजा पर माता पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं है।

इस प्रकार स्वामी दयानंद सरस्वती ने स्वतंत्रता यात्रा को एक नई गति प्रदान की। वह प्रथम आर्य संन्यासी थे **जिन्होंने 'स्वदेशी' तथा 'स्वराज्य' शब्द का प्रयोग करके भारतीय जनों के लिए एक आत्म-सम्मान तथा राष्ट्रप्रेम का उद्घोष किया था।** राष्ट्रीय स्वाधीनता और स्वराज्य का यह उदात्त स्वरूप आधुनिक युग में सर्वप्रथम स्वामी दयानंद जी ने ही प्रतिपादित किया था।

स्वामी दयानंद सरस्वती उन संन्यासियों में थे, जो स्वाधीनता संग्राम की असफलता (सन् 1857 का स्वतंत्रता संग्राम) से निराश नहीं हुए अपितु उसके कारणों को गंभीरता से विचार कर अपने उद्देश्य की पूर्ति का प्रयत्न उन्होंने जारी रखा। भारत में विदेशियों का शासन कायम रहने के कारण स्वामी दयानंद ने इस प्रकार लिखा है-''विदेशियों के आर्यावर्त में राज्य होने के कारण आपस की फूट, मतभेद, ब्रह्मचर्य का सेवन न करना, विद्या न पढ़ना-पढ़ाना व बाल्यावस्था में अस्वयंवर विवाह, विषयासक्ति, मिथ्याभाषणादि कुलक्षण, वेद विद्या का अप्रसार आदि कुकर्म हैं। जब आपस में भाई-भाई लड़ते हैं तभी तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता हैं।''

इस प्रकार स्वामी जी आपस की फूट को भी एक कारण मानते थे। इसी बात का लाभ विदेशियों ने उठाया था। स्वामी दयानंद को यह सब देखकर तीव्र वेदना होती थी। उन्होंने भली-भाँति समझ लिया

था कि जब तक भारत के विविध सम्प्रदायों, मतमतान्तरों में परस्पर भेदभाव, विविध राजशक्तियों में परस्पर विद्वेष व विरोध का अन्त होकर एक साथ काम करने की प्रवृत्ति उत्पन्न नहीं होगी तथा जनता के सभी वर्ग एक साथ मिलकर नहीं चलेंगे। अर्थात् एक नहीं हो जायेंगे, तब तक विदेशी शासन से छुटकारा पाना असंभव है। उन्होंने यह भी समझ लिया था कि जब तक इसमें बहुत सी सामाजिक बुराइयाँ जैसे बाल विवाह, बेमेल विवाह, भोग विलास में संलिप्त रहना तथा जनसाधारण का अशिक्षित होना आदि हैं और जो लोगों का आचरण वेदों के प्रतिकूल हो गया, उसमें सुधार किये बिना भारत का स्वतंत्र होना अत्यन्त कठिन होगा। अंग्रेजी शासन को उखाड़ फेंकने के लिए प्रयत्न तभी सफल हो पायेगा, जब शिक्षा का प्रसार, धर्मानुकूल आचरण, समाज सुधार आदि द्वारा आर्य जनता में शक्ति, सामर्थ्य का संचार किस प्रकार हो, यह चिन्तन स्वामी जी के मन-मस्तिष्क में सदैव चलता रहता था। इस प्रकार भारत की उन्नति तथा राष्ट्रीय स्वाधीनता के मार्ग में जो बाधाएँ थी, स्वामी जी ने उन्हें पहचाना और उन्हें दूर करने में अपनी शक्ति लगा दी। समाज सुधार के लिए उन्होंने जो प्रयत्न किये वह स्वतंत्र एवं प्रगतिशील भारत के निर्माण में बहुत सहायक सिद्ध हुए।

स्वामी दयानंद सरस्वती ऐसे प्रथम व्यक्ति थे, जिन्होंने राष्ट्र की अवधारणा दी है। स्वामीजी द्वारा मुखरित-स्वदेशी, स्वराज्य, देशप्रेम एवं राष्ट्रीयता आदि भावनाओं की आधारशिला पर ही हमारी राष्ट्रीय आन्दोलन की जड़ें गहराई तक समाहित हुईं और इन्हीं आदर्शों को आत्मसात कर राष्ट्रीय आन्दोलन विकास के चरमोत्कर्ष पर पहुँचा। यही कारण है कि स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रत्येक आयामों पर स्वामी दयानंद जी के सिद्धान्तों का अनुकूल प्रभाव पड़ा। चाहे वे गोपाल कृष्ण गोखले हों, जिसे महात्मा गाँधी जी ने अपना गुरु माना था, के नेतृत्व में उदारवादी विचारधारा हो, या अहिंसक, सत्य, नैतिकता पर आधारित गाँधी विचारधारा हो या फिर क्रान्तिकारी श्यामजी कृष्ण वर्मा, रामप्रसाद बिस्मिल, भगत सिंह एवं चन्द्रशेखर आजाद आदि के नेतृत्व में क्रान्तिकारी विचारधारा हो या लाल-बाल-पाल के नेतृत्व में राष्ट्रीय विचारधारा हो। प्रत्येक आयामों के मूल में स्वामी दयानंद सरस्वती का पवित्र तप एवं पुरुषार्थ का विशुद्ध प्रभाव बराबर दृष्टिगोचर होता है।

स्वामी दयानंद सन् 1857 में तथा उसके पश्चात् कई वर्षों तक वे उन्हीं प्रदेशों में भ्रमण करते रहे थे। जो स्वाधीनता संग्राम के मुख्य क्षेत्र थे। स्वामीजी जैसे संवेदनशील तथा प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तित्व पर सन् 1857-58 ई. की घटनाओं ने अत्यधिक प्रभाव डाला था। इस काल में अंग्रेजों ने जिस बर्बरता से हिन्दू मन्दिरों को ध्वंस कर उन मूर्तियों को तोड़ा था, उसे देखकर जो दारुण वेदना स्वामी जी को हुई थी, वह उस समय आक्रोश के भावों से गये थे। स्वामीजी ने जहाँ वेदशास्त्रों के अध्ययन का मार्ग मनुष्य मात्र के लिए प्रशस्त कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया वहीं राष्ट्रीय गौरव तथा स्वाधीनता के लिए भी चेतना उत्पन्न कर अपना सर्वस्व देश के लिए न्यौछावर किया।

स्वामी दयानंद का कार्यक्षेत्र केवल धार्मिक, शैक्षिक सामाजिक तथा आर्थिक तक ही नहीं रहा अपितु राजनीतिक समस्याओं के समाधान के लिए भी प्रंयत्न, विचार मन्तव्य प्रतिपादित किये, जिनके द्वारा न केवल भारत अपितु सम्पूर्ण विश्व का हित व कल्याण संभव रहा। राष्ट्रीय स्वतंत्रता, विश्व शान्ति, लौकिक अभ्युदय, सामाजिक न्याय तथा आर्थिक उन्नति के सम्बन्ध में भी स्वामीजी के विचार अत्यन्त प्रासंगिक एवं महत्त्वपूर्ण रहे हैं।

निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि स्वामी दयानन्द सरस्वती का योगदान समाज सुधार के रूप में तो था ही, स्वतंत्रता संग्राम में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है।

स्वामी दर्शनानन्द
गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

संस्कृत साहित्य में नारी महिमा

1. **यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः ।**
   जहाँ नारियों का सम्मान होता है, वहाँ देवगण विचरण करते हैं।
2. **तदैव तत्कुलं नास्ति यदा शोभन्ति जामयः**
   वह कुल तभी नष्ट हो जाता है, जब कुलीन स्त्रियाँ दुःखी होती हैं।
3. **न स्त्री रत्न समं रत्नम् ।**
   स्त्री रत्न से बढ़कर दूसरा रत्न नहीं है।
4. **राजपत्नी गुरोः पत्नी मित्र पत्नी तथैव च।**
   पत्नी माता स्वमाता च पंचैताः मातरः स्मृताः।
   राजा की पत्नी, गुरु की पत्नी, मित्र की पत्नी, पत्नी की माता (सासु) और अपनी माता- ये पाँच माताएँ मानी जाती हैं। अर्थात् ये माता के समान हैं।
5. **न गृह गृहमित्याहर्गृहिणी गृहमुच्यते।**
   तया विना गृहं शून्यं यथारण्यं तथा गृहम्।।
   केवल घर रहने से घर नहीं होता, वास्तविक रूप में घर में गृहिणी (पत्नी) हो, उसे ही घर कहते हैं। गृहिणी के बिना घर और वन में कोई भेद नहीं रह जाता। अर्थात् वन के समान है।

भास्वर भास्कर

सर्वतोमुखी क्रांति के अग्रदूतः महर्षि दयानन्द

-डॉ0 शिवकुमार शास्त्री

विचारविचक्षण पाठकवृन्द ! प्रसिद्ध इतिहासकार रोम्यां रोलां ने युगप्रवर्तक महर्षि स्वामी दयानन्द सरस्वती के सम्बन्ध में अपने उद्गार प्रकट करते हुए कहा था-

"आर्यसमाज सब मनुष्यों एवं सब देशों के प्रति न्याय और स्त्री-पुरुषों की समानता को सिद्धान्त रूप में स्वीकार करता है। यह जन्मना जात-पांत का विरोधी है और गुण-धर्म और स्वभाव के आधार पर वर्ण व्यवस्था को मानता है। इस विभाजन से धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं। अस्पृश्यता से आर्यसमाज को घोर घृणा है। स्वामी दयानन्द से बढ़कर हरिजनों के हितों का रक्षक दूसरा कोई कठिनाई से ही मिलेगा। स्त्रियों को दयनीय स्थिति से उबारने, समान अधिकार दिलाने और शिक्षा की उपयुक्त व्यवस्था कराने में दयानन्द जी ने बड़ी उदारता और बहादुरी से काम लिया।

भारत में जो इस समय राष्ट्रीय पुनर्जागरण दीख रहा है, उसमें भी स्वामी दयानन्द ने प्रबल शक्ति के रूप में काम किया .... दयानन्द राष्ट्रीय संगठन और पुनर्निर्माण का उत्साही मसीहा था। मैं समझता हूँ..... राजनीतिक जागरण के बनाए रखने और सही दिशा देने में उनका प्रमुख हाथ रहा है।"

इतिहास साक्षी है कि जिस समय देव दयानन्द का प्रादुर्भाव हुआ, उस समय प्राचीन वैदिकधर्मी नाना प्रकार के मत-मतान्तरों की मदिरा से मत्त होकर पथभ्रष्ट हो चुका था। एक ईश्वर के स्थान पर अनेक मनमाने ईश्वर बना लिये गये थे। श्रेष्टतम कर्म-यज्ञ-हिंसा का शिकार हो रहा था। वेदों के भाष्य के नाम पर अनर्गल प्रचार हो रहा था। विधर्मी वेदों को गड़रियों के गीत कह कर हमारे धर्म की खिल्ली उड़ा रहे थे। अंध विश्वास और पाखण्ड चरमसीमा पर था। गुरु को ईश्वर से बड़ा समझा जाता था। स्वार्थी और पाखण्डी पण्डितों ने **'स्त्री शूद्रौ नाधीयताम्'** का फतवा देकर इनके लिए वेदों का द्वार सदा के लिए बन्द कर रखा था। बाल विवाह, वृद्ध-विवाह और बहु विवाह पर जहां कोई प्रतिबन्ध न था, वहाँ विधवा विवाह तथा पुनर्विवाह की चर्चा करना तक अपराध माना जाता था। हरिजन देवालयों में नहीं जा सकते थे, वे सवर्णों के कुंओं से पानी नहीं भर सकते थे, सतीप्रथा एवं यज्ञों में पशुबलि जैसी बुराइयां धर्म के नाम पर पनप रही थीं। हिन्दू समाज प्याज के छिलकों की तरह सारहीन बना हुआ था। राजनीतिक दृष्टि से हम परतंत्र तो थे ही, आपस में राजा-महाराजा एक-दूसरे का विरोध कर अंग्रेजी सत्ता के हाथ मजबूत कर रहे थे। अनाथों एवं विधवाओं का क्रन्दन समाज के लिए

अभिशाप बना हुआ था। विदेशी शिक्षा, चिन्तकों, विचारकों एवं मनीषियों के स्थान पर केवल मात्र क्लर्क बना रही थी। सन् 1857 के स्वतंत्रता संग्राम के बाद सभी के मन बुझे हुए थे। उस समय के शासक सुरा और सुन्दरी के पाश में जकड़े हुए थे। सम्पूर्ण भूमण्डल पर सार्वभौम चक्रवर्ती साम्राज्य स्थापित करने वालों की सन्तान अपने गौरव को भूलकर अंग्रेजों की चाटुकारिता में ही अपने को धन्य समझने लगी थी, राणा और शिवा की सन्तान अन्याय के खिलाफ बोल नहीं पा रही थी।

ऐसी विषम से विषमतर और विषमतर से विषतम परिस्थितियों में देव दयानन्द ने आर्यजाति को झकझोरा। आज देश में जो शुभ लक्षण दिखाई दे रहे हैं, उनके मूल में देव दयानन्द का अथक परिश्रम विद्यमान है।

'स्वराज' शब्द का बोध कराने वाले महर्षि दयानन्द की कृपा से हमारे देश में नई चेतना और जागृति आई थी। स्वामी जी ने हिन्दू धर्म को जो प्याज के छिलकों की तरह बंटा हुआ था- संगठित करने के लिए एकेश्वरवाद, त्रैतवाद एवं पंचमहायज्ञों का विधान किया।

हिन्दी भाषा के वे प्रबल समर्थक थे। महर्षि ने संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित और अहिन्दीभाषी होते हुए भी अपने ग्रन्थ आर्यभाषा (हिन्दी) में लिखे। सभी आर्यसमाजियों के लिए हिन्दी में व्यवहार करना आवश्यक बताया।

नारी-जो कि पैरों की जूती और नरक का द्वार समझी जाती थी, देव दयानन्द के लिए पूजा और श्रद्धा के योग्य थी। उन्होंने राजर्षि मनु के डिण्डिम घोष का पुनरुद्घोष करते हुए कहा-

''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।''

स्वराज्य और स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग के लिए तत्कालीन राजा-महाराजाओं को प्रेरित किया।

गुरुकुलीय शिक्षा प्रणाली को जन्म देकर उन्होंने शिक्षा के क्षेत्र में सबको समान अधिकार देने का प्रयास कर ऊँच-नीच की भावना को समाप्त किया। गौ को भारत की समृद्धि का कारण बताते हुए उनकी हत्या पर रोक लगाने की ब्रिटिश सरकार से मांग की।

मज़हबी जुनून से हट कर स्वामी जी ने कहा- **''मेरा कोई नवीन कल्पना व मत-मतान्तर चलाने का लेशमात्र भी अभिप्राय नहीं है, किन्तु जो सत्य है, उसको मानना, मनवाना और जो असत्य है, उसको छोड़ना और छुड़वाना मुझको अभीष्ट है। यदि मैं पक्षपात करता तो आर्यावर्त्त में प्रचलित मतों में से किसी एक मत का आग्रही होता।''**

आपस की फूट के भयंकर परिणामों की चर्चा करते हुए स्वामी जी ने चेतावनी दी -

''जब भाई-भाई आपस में लड़ते हैं, तब तीसरा विदेशी आकर पंच बन बैठता है।''

''आपस की फूट के कारण कौरवों, पाण्डवों और यादवों का सत्यानाश हो गया, सो तो हो ही गया परन्तु यह भयंकर राक्षस अब भी आर्यों के पीछे लगा है। न जाने कभी छूटेगा या आर्यों को सब सुखों से छुड़ा कर दुःखसागर में डुबो मारेगा।''

जिस ऋषि ने बोध प्राप्ति से लेकर जीवन के अन्त तक अपना क्षण-क्षण संसार के उपकार में व्यतीत किया, जिसने विष पीकर अमृत प्रदान किया, उस महान् ऋषि के प्रति भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हुए हम सब प्रतिज्ञा करें कि देव दयानन्द के अधूरे कार्यों को पूरा कर **'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्'** के नारे को सार्थक सिद्ध करने का भरसक प्रयास करेंगे।

दूरभाष- 9810095061

मूढ़ के लक्षण

1. अमित्रं कुरुते मित्रं, मित्रं द्वेष्टि हिनस्ति च।
कर्म चारभते दुष्टं तमाहुर्मूढ़ चेतसम् ॥

जो शत्रु को मित्र बनाता है, मित्र से द्वेष करता है, उसे पीड़ा पहुँचाता है, दुष्टकर्म करता है, उसे मूढ़ चित्त वाला कहते हैं।

2. संसारयति कार्याणि सर्वत्र विचिकित्सते ।
चिरं करोति क्षिप्रार्थे स मूढ़ो भरतर्षभ ॥

जो कार्यों को फैला देता है, पर सर्वत्र संदेह करता है और जिस काम में शीघ्रता की आवश्यकता है, उसमें देर करता है, वह मूढ़ है।

3. परं क्षिपति दोषेण वर्तमानः स्वयं तथा ।
यश्च क्रूध्यत्यनीशानः स च मूढ़ तमो नरः॥

जो स्वयं दोष युक्त होते हुए दूसरे पर दोषारोपण करता है और असमर्थ होते हुए भी क्रोध करता है, वह मनुष्य सबसे बड़ा मूर्ख है। (महाभारत)

रचनाधर्मिता

महर्षि दयानन्द की रचनाओं का संक्षिप्त परिचय

-रश्मि गुप्ता

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म गुजरात जिले में टंकारा ग्राम में हुआ था। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था। बचपन से ही वह विलक्षण प्रतिभा के धनी थे उन्हें बहुत से ग्रन्थों का प्रारम्भ से ही काफी ज्ञान था आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द जी एक वीतरागी संन्यासी एवं परोपकारी मानव थे जिन्होंने अपने कर्मों से महापुरुषत्व के पद को प्राप्त किया। अपने वक्तव्यों, शास्त्रार्थों एवं विभिन्न ग्रन्थों के कारण वे विधर्मियो के द्वारा असहिष्णु व विवादी व्यक्ति आदि के रूप में देखे जाते रहे परन्तु वे स्वतंत्रता, स्वदेश व अखण्ड राष्ट्र के प्रखर वक्ता व सुंदर समाज के निर्माण में अग्रसर थे। इतिहास में उनका स्थान अतुल्य एवं अद्वितीय है। पाखण्डों को समूल उखाड़ फेंकने वाले आधुनिक, भारत के पुनर्निर्माण में अपना सर्वस्व स्वाहा कर देने वाले महामनीषियों में अग्रगण्य नाम महर्षि दयानन्द सरस्वती का है।

ऋषि दयानन्द यदि चाहते तो इस जगत को त्याग कर जंगलों में जाकर अपने तपोबल व ब्रह्मचर्य के बल से मुक्ति प्राप्त कर सकते थे, परन्तु देश और समाज की मुक्ति व मानवता के लिये ऋषि दयानन्द ने धर्म, समाज, शिक्षा और राजनीतिशास्त्र आदि प्रत्येक क्षेत्र में नवजागरण हेतु अपनी पुस्तकों सत्यार्थ प्रकाश, संस्कार विधि, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, वेदभाष्यादि में लिखे विचारों से इस जगत को बहुत कुछ दिया। ऋषि दयानन्द ने वेदों की शिक्षाओं को अतीव व्यावहारिक सिद्ध करते हुये "वेदों की ओर लौटो" का नारा देकर मानवता का सबसे बड़ा उपकार किया है। अपने इसी लक्ष्य की पूर्ति के लिये उन्होंने वेदों के तर्कसंगत भाष्य भी किये।

महर्षि दयानन्द ईश्वर के सच्चे उपासक थे इसलिये उन्होंने कहा कि सर्वव्यापक, सत् चित्त, आनन्द-(सच्चिदानंदस्वरूप) सर्वशक्तिमान, सृष्टिकर्ता परमात्मा की ही उपासना करना योग्य है। इसके विपरीत उन्होंने ईश्वर की काल्पनिक आकृति बनाने वाले अथवा अपने को ईश्वर का अवतार सिद्ध करने वाले गुरुओं, बाबाओं आदि पूर्ण पाखण्डियों से बचने का प्रबल आग्रह किया। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना के साथ ही महर्षि दयानन्द ने आर्य राष्ट्र की आधार शिला रखी। इसके साथ ही साम्प्रदायिकता एवं शराब आदि नशीली वस्तुओं का विरोध करते हुये उन्होंने **"वसुधैव कुटुम्बकम्"** की अवधारणा को लागू करने की प्रेरणा दी। महर्षि दयानन्द का समग्र दर्शन ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति के गुण, कर्म, -स्वभाव व स्वरूप पर केंद्रित है। वेदमंत्रो की छाया में बैठकर आर्ष ग्रन्थों के आधार पर उन्होंने अपने मन्तव्यों को तर्क के साथ स्पष्ट किया।

श्रद्धेय महर्षि दयानन्द जी की कुछ रचनाओं के नाम इस प्रकार हैं- (1) सत्यार्थ प्रकाश (2) संस्कार विधि (3) ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका (4) यजुर्वेद वेद भाष्य (5) पंच महायज्ञ विधि (6) व्यवहार भानु (7) वेदांग प्रकाश (व्याकरण सम्बन्धी पुस्तकें (20-25) (8) वेदान्त ध्वान्त निवारण

(9) भ्रमोच्छेदन (10) आर्योद्देश्य रत्नमाला (11) आर्याभिविनय (12) हस्त-लिखित दयानन्द की आत्मकथा (13) और गोकरुणानिधि।

सत्यार्थप्रकाश - इसमें सम्पूर्ण वेदों और शास्त्रों का सारांश है। यह 14 समुल्लासों में विभक्त है। प्रथम दस समुल्लास मंडन विषय पर शेष चार समुल्लास खंडन विषय पर हैं।

संस्कार विधि - इसमें जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त 16 संस्कारों का वर्णन विस्तार से किया गया है। ऋषि दयानन्द ने मनुष्य जन्म को सुसंस्कृत बनाने के लिये बहुविध संस्कारों की चर्चा की है।

ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका - इसमें ऋषि ने वैदिक निबन्धों का संकलन और वेद के मुख्य-मुख्य विषयों को सप्रमाण प्रस्तुत किया है जैसे प्रार्थना विषय, वेद विषय, वेदोत्पत्ति विषय, पंच यज्ञ विषय, पुनर्जन्म विषय, उपासना विषय, सृष्टि विद्या विषय, गणित विद्या विषय इत्यादि। ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में उन्होंने लिखा है- **''ग्यारह रुद्र, बारह आदित्य, मन, अन्तरिक्ष, वायु, द्यौ और मंत्र ये मूर्तिरहित देव हैं तथा पांच ज्ञानेन्द्रियाँ बिजली और विधि-यज्ञ ये सब देव मूर्तिमान् और अमूर्तिमान भी है।**

यजुर्वेद वेद-भाष्य- इस पुस्तक में महर्षि दयानन्द जी ने सर्वप्रथम चालीस अध्यायों का भाष्य किया। यह भाष्य संस्कृत व हिन्दी दोनों भाषाओं में उपलब्ध है। इस भाष्य की रचना में लगभग चार वर्ष और दस मास लगे थे।

पंच महायज्ञ विधि- इसमें ब्रह्मयज्ञ, देव यज्ञ, पितृयज्ञ, अतिथि यज्ञ और बलि वैश्व यज्ञ की विस्तृत व्याख्या है। ये पांच महायज्ञ वैदिक धर्मियों के नैतिक कर्तव्यों में मुख्य हैं। संध्या का यौगिक विधि के अनुसार यथार्थ रूप में अनुष्ठान करने से योग के ईश्वरप्राणिधान, प्राणायाम, धारणा, ध्यान आदि अनेक अंगो का समावेश हो जाता है जो कि ईश्वर-प्राप्ति के मुख्य साधन हैं।

व्यवहार भानु- इसमें दैनिक जीवन से सम्बन्धित आचार-विचार, व्यवहार का विस्तृत वर्णन किया गया है। साधारण लोंगो के लिये 'व्यवहार भानु' एक अत्यन्त उपयोगी पुस्तक है । इस ग्रन्थ में अत्यन्त सरल शब्दों में नित्यप्रति के 'व्यावहारिक कर्तव्यों' का बहुत सुंदर वर्णन किया है।

वेदांग प्रकाश- इसमें संस्कृत व्याकरण से सम्बन्धित विषयों का विस्तार से वर्णन किया गया है। वेदांग प्रकाश की रचना चौदह भागों में हुई है। ऋषि ने मध्यम श्रेणी के मनुष्यों के संस्कृत व्याकरण सीखने के लिये इन ग्रन्थों की रचना की।

वेदान्त ध्वान्त निवारण- इसमें 'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या' आदि सिद्धान्तों का खण्डन किया गया है। स्वामी जी ने इस पुस्तक को दो ही दिनों में समाप्त कर दिया था।

भ्रमोच्छेदन- इसमें वैदिक धर्म के ऊपर जो भ्रम आदि फैले हुये हैं उनको दूर करने का प्रयास किया गया है। स्वामी जी एक मास बारह दिन फर्रुखाबाद में रहे थे अत: यह ग्रन्थ फर्रुखाबाद में ही रचा

गया था। इस पुस्तक में बहुत कठोर शब्दों द्वारा भ्रम को दूर करने का प्रयास किया गया था।

आर्योद्देश्य रत्न माला- इसमें आर्य विचार धारा से सम्बन्धित शब्दों की व्याख्या की गयी है। महर्षि दयानन्द ने आर्यों के १०० मन्तव्यों का एक संग्रह आर्योद्देश्य रत्न माला के नाम से प्रकाशित किया। यह ग्रन्थ यद्यपि आकार में बहुत छोटा है, परन्तु है बड़ा महत्त्वपूर्ण। संभव है प्रचारकाल में महर्षि को एक ऐसे ग्रन्थ की आवश्यकता का अनुभव हुआ होगा, जिसमें संक्षेप में आर्यों के मन्तयों का संग्रह हो।

आर्याभिविनय- इसमें वेदमंत्रो के माध्यम से आर्यों के द्वारा ईश्वर से प्रार्थना की गयी है। वैदिक भक्ति के यथार्थ स्वरूप के ज्ञान के लिये ऋषि ने आर्याभिविनय नाम का एक अपूर्व ग्रन्थ रचा। इस ग्रन्थ से केवल मनुष्यों को ईश्वर का स्वरूपज्ञान, भक्ति, धर्म निष्ठा और व्यवहार शुद्धि आदि प्रयोजन सिद्ध होंगे जिससे पाखण्ड व अधर्म में मनुष्य न फंसे।

हस्तलिखित दयानन्द की आत्मकथा- इस पुस्तक में दयानन्द जी ने अपना जीवन चरित्र अपने शब्दों में लिखा है। थियोसोफिकल सोसाइटी के संस्थापकों में कर्नल आल्काट के विशेष आग्रह से ऋषि दयानन्द ने अपना संक्षिप्त चरित्र लिखकर कर्नल आल्काट को भेजा था। उस चरित्र का अंग्रेजी अनुवाद उस समय की ''थियोसोफिकल पत्रिका'' में प्रकाशित किया था। इसी प्रकार संवत् 1932 में पूना में स्वामीजी ने अपनी व्याख्यान माला में एक दिन आत्मचरित्र का वर्णन किया था। वह उपदेश मंजरी के नाम से प्रकाशित ''पूना के व्याख्यान संग्रह'' में छपा है। इंग्लैंड निवासी प्रो० मैक्समूलर ने सब से प्रथम स्वामी दयानन्द का जीवन चरित्र लिखने का संकल्प किया था। इनके अतिरिक्त संस्कृत, मराठी, गुजराती, बंगाली व अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं में स्वामी जी के जीवन चरित्र छपे हैं।

गौ करुणानिधि- करुणानिधि दयामय दयानन्द ने अपने कार्यकाल में गौ आदि मूक प्राणियों की रक्षार्थ महान आन्दोलन किया था । वायसराय तथा भारत सरकार के पास तीन करोड़ भारतवासियों के हस्ताक्षर युक्त प्रार्थना पत्र भेजने के लिये भी बहुत परिश्रम किया था परन्तु यह कार्य अधूरा रह गया था इस कार्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से ऋषि ने एक 'गोकरुणानिधि' नामक ग्रन्थ भी लिखा। इसमें उन्होंने स्पष्ट किया कि गौ आदि पशुओं को मार कर खाने की अपेक्षा उनकी रक्षा करके उनके घी-दूध द्वारा मनुष्यों को अत्यधिक लाभ पहुँचता है और मांसाहार के अवगुणों तथा निरामिष भोजन के महत्त्व का भी वर्णन किया है। यह ग्रन्थ आगरा में ही रचा गया।

इन पुस्तकों के अतिरिक्त अनेक पुस्तकें हैं जो महर्षि देव दयानन्दजी द्वारा लिखी गई हैं और उपलब्ध भी हैं परन्तु सभी के बारे में लिखना संभव नहीं है। स्वामी जी विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी थे उनके बारे में जितना भी लिखा जाय कम ही है। मेरी दृष्टि में तो ऐसा महापुरुष **''न भूतो न भविष्यति''**। स्वामीजी को शत-शत नमन।

कुटि सं० 2/80
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

कृतज्ञता

महर्षि दयानन्द की दृष्टि में नारी सशक्तीकरण

-श्रीमती मनोषा विमल

सर्व प्रथम मैं युगपुरुष महर्षि दयानन्द को नमन करती हूँ जिनकी दूर दृष्टि और कृपा से आज के युग में हम महिलायें शिक्षित होकर समाज के हर क्षेत्र में अपना योगदान दे रही हैं तथा स्वाभिमान से जीने योग्य बन गई हैं।

जिस युग में महर्षि दयानन्द का आगमन हुआ उस सदी में भारतीय समाज की दशा बहुत शोचनीय थी। जब वे योग साधना व शास्त्रों आदि का स्वाध्याय कर अपने गुरु स्वामी विरजानन्द को दक्षिणा में लौंग देने लगे तो उन्होंने कहा कि मुझे तुम्हारी लौंग की अपेक्षा एक वचन चाहिये कि तुम देश की दशा सुधारने का कार्य करोगे।

अपने गुरु को वचन देकर स्वामी दयानन्द घूम-घूम कर अपने प्रवचनों द्वारा जन जागरण का कार्य करने लगे। एक बार महर्षि गंगा तट पर टहल रहे थे उन्होंने देखा एक महिला अपने मृत शिशु को लेकर आई और उसे गंगा में बहा दिया, तथा उसके ऊपर लपेटा कपड़ा गंगा में धोकर रख लिया। आर्तनाद करती वह महिला चल पड़ी। ऋषि ने जिज्ञासावश पूछा, ''माता आपने अपने मृत शिशु के ऊपर का कपड़ा क्यों उतार लिया। तब उस महिला ने कहा, **''मेरे पास तन ढकने को केवल यही एक साड़ी है। अपने पुत्र को तो गंगा मैया के सुपुर्द कर दिया अब इससे अपना तन ढक सकूँगी।''**

उस दृश्य ने महर्षि का दिल देश की नारियों की दशा देख कर चीत्कार कर उठा और उन्होंने नारी सुधार की दशा में कदम बढ़ा दिये, उन्होंने देखा कि समाज में बेमेल विवाह, बाल विवाह, सती प्रथा, नारी को शिक्षा से वंचित किया जाना आदि कुरीतियाँ बहुतायत में फैली हुई हैं। वे दृढ़ निश्चय करके इन कुरीतियों को दूर कर नारी उत्थान के प्रयत्न में लग गये।

उस समय महर्षि दयानन्द ने नारी उत्थान का जो बीज बोया था वह अब बीसवीं सदी में वृक्ष बनने लगा है।

वेदों में नारी के विषय में अपूर्व ज्ञान भरा पड़ा है उन्होंने उसका गहन अध्ययन किया। उसे जाना, समझा, फिर समाज में नई चेतना का प्रचार किया। वेदों के प्रमाणों के आधार पर उन्होंने नारी शिक्षा, बाल विवाह के दुष्परिणाम बताकर उनका खण्डन, गृहस्थ धर्म का ज्ञान, पत्नी के कर्तव्य, सती प्रथा का विरोध, वर-वधू के चुनाव आदि विषयों को नारी उत्थान का उद्देश्य बनाया।

उस समय पौराणिक पण्डितों में पाराशरी और शीघ्रबोध जैसे ग्रन्थों का हवाला देते हुये प्रचारित कर रखा था कि यदि कन्या का विवाह आठ-दस वर्ष की आयु में नहीं किया गया तो पिता व भाई को नरक मिलेगा, ऐसे समय स्वामी दयानन्द जी ने मनुस्मृति व वेदों का प्रमाण देते हुये बताया कि यह सब कपोल कल्पित है। जो स्त्री शिक्षा सतीप्रथा का समर्थन करते थे उनको फटकारते हुये स्वामी जी

ने कहा, ''यह तुम्हारी मूर्खता है, स्वार्थ परता है, बुद्धिहीनता है, सभी स्त्रियों को शिक्षा का अधिकार है। वेद पढ़ने का अधिकार है। सत्यार्थ प्रकाश के तृतीय सम्मुलास के एक प्रश्न का उत्तर देते हुये उन्होंने बताया कि **'इदं मन्त्रं पठेत्'** अर्थात् स्त्री यज्ञ में मन्त्र पढ़े'

यदि स्त्री शिक्षित नहीं होगी तो मन्त्रों का शुद्ध उच्चारण कैसे कर सकेगी। अपने प्रवचनों के माध्यम से वेदों को आधार बना कर उन्होंने नारी शिक्षा पर अधिक जोर दिया।

यजुर्वेद व ऋग्वेद का मन्त्रों को आधार बना कर उन्होंने समझाया कि प्राचीन काल में आर्य लोगों की स्त्रियाँ सुशिक्षित, युद्धकला में पारंगत, नृत्य कला, न्याय विभाग, शिल्पकला, धर्मशास्त्र, गृहस्थ धर्म, गणित आदि में पारंगत होती थी, वह अच्छी जासूस होती थी जो युद्ध के समय सहायता करती थी। इतिहास गवाह है कि स्त्रियों को भी उपनयन गुरुगृह में वास का अधिकार होता था। अनेक विदुषी महिलायें गार्गी, सुलभा, कात्यायनी, मैत्रेयी जैसी ऋषिकायें ऋषियों की शंकाओ का भी समाधान करती थी।

यजुर्वेद के एक मंत्र (दसवें अध्याय का छब्बीसवाँ मन्त्र) स्पष्ट बताता है कि स्त्रियों को ज्ञान होना आवश्यक है।

'स्योनासि सुषदासि क्षत्रस्य योनिरसि, स्योनामासीद सुषदामासीद क्षमस्य योनिमासीद

(यजुर्वेद 10-26)

''हे रानी आप सुन्दर व्यवहार करने वाली, राज्य में न्याय करने वाली, अच्छी शिक्षा में तत्पर हूजिये, अच्छी सुख देने वाली विद्या करिये तथा कराइये (अन्य स्त्रियों को भी) तथा राजनीति को भी सभी स्त्रियों को जनाइये''

वेदो में कहा गया है **''माता हि निर्माता भवति''** क्योंकि माता बच्चे की प्रथम गुरू होती है। जन्म से पाँच वर्ष तक माता ही बच्चे की शिक्षा का केन्द्र होती है। क्योंकि वहाँ बच्चे को भाषा ज्ञान कराती है, सत्य ज्ञान, सत्य विद्या तथा सत्य भाषण सिखाती है, निडर, साहसी तथा निर्णय लेने की क्षमता वाला बनाती है। माता ही गर्भ में बच्चे को अच्छे संस्कार देने में सक्षम होती है। माता ही पंचायतन पूजा का पहला देवता है।

यद्यपि महर्षि दयानन्द आजीवन ब्रह्मचारी थे, उनका नारी के किसी रूप से साक्षात्कार नहीं था, उन्होंने केवल माता व भागिनी के रूप को ही जाना था, वह भी अल्पकाल ही। फिर भी स्वाध्याय के बल पर वेदों के सत्यासत्य ज्ञान के आधार पर नारी उत्थान व नारी शिक्षा की ज्योति जलाई थी। अब वह ज्योति पूर्ण प्रज्वलित होकर सामने आ रही है उन्होंने 'संस्कार विधि' व 'सत्यार्थ प्रकाश' नाम की अपनी पुस्तकों में नारी से जुड़ी हर समस्या का हल विस्तृत रूप से समझाया है।

उस काल में नारियों की स्थिति ऐसी थी जैसे आटे से बना दीपक, घर से बाहर कौवे नहीं छोड़ेंगे तथा घर के अन्दर चूहे नहीं छोड़ेंगे, मातृ शक्ति को कहा जाता था **''द्वारं किमेकं नरकस्य नारी''**

''स्त्री शूद्रौ नाधीयताम'' इत्यादि वाक्यों से महिलाओं को अपमानित किया जाता था। विधवा होने पर पति के साथ जिन्दा जला दिया जाता था। छोटी-छोटी बच्चियों को भी पर्दे के अन्दर रखा जाता था जिससे वह बाहर के प्रकाश को भी न देख सकें। उन्हें 'असूर्यम्पश्या' जैसे विशेषणों से सम्बोधित किया जाता था। इन्हीं सब कुरीतियों को देखते हुये उन्होंने अपने पूना प्रवचन '12' में कहा था-

''यदि इस समय हम लोगों में बाल विवाह प्रचलित न होते तो विधवाओं की संख्या इतनी न होती, न ही भ्रूण हत्यायें होतीं और न ही इतने गर्भपात होते''

महर्षि दयानन्द ने स्त्री को हमेशा माता के रूप में ही देखा था। एक बार स्वामी जी राज पण्डितों के साथ घूम रहे थे और मूर्ति पूजा पर चर्चा चल रही थी अचानक रास्ते में एक देवालय पड़ा, वहाँ लगभग चार पाँच की आयु के कुछ बच्चे खेल रहे थे, महर्षि रुके और हाथ जोड़ कर नमन किया, इस पर राजपण्डित कहने लगे स्वामी जी आप मूर्ति पूजा का जितना भी खण्डन करें आखिर देवताओं की शक्ति के आगे आपको नतमस्तक होना ही पड़ा, उस पर स्वामी जी ने कहा, ''तुम चार वर्ष की इस कन्या को देख रहे हो। जो निर्वस्त्र है, यह मातृशक्ति है जिसने हमें जन्म दिया है। कैसी दीन-हीन अवस्था में है हमारी मातृशक्ति।

इस तरह इन वेद मूलक विचारों का प्रभाव धीरे-धीरे समाज पर पड़ने लगा जिसका श्रेय स्वामी जी द्वारा स्थापित आर्य समाज को जाता है। स्वामी जी के इन विचारों को फैलाने का कार्य उस समय के कर्मठ कार्य-कर्त्ताओं को जाता है। नारी शिक्षा के उद्देश्य को लेकर स्वामी श्रद्धानन्द, महात्मा नारायण स्वामी जैसे अनेक वैदिक विद्वानों ने तत्कालीन समय में कन्या गुरुकुल व कन्या पाठशालायें खोलीं। आर्य समाज के एक महानस्तम्भ श्री हर विलास शारदा जी के अथक प्रयत्नों से 1929 में बाल विवाह विरोधी कानून भी पारित हो सका। धीरे-धीरे जनता में कन्याओं की शिक्षा का प्रचार होने लगा।

आज बीसवीं सदी में स्त्रियों की दशा में काफी सुधार आया है, महर्षि द्वारा प्रज्वलित नारी उत्थान की ज्योति अपने प्रकाश को फैला रही है। आज देश की महिलायें घर गृहस्थी तक ही सीमित नहीं है वरन जीवन के हर क्षेत्र को गौरवान्वित कर रहीं हैं, अपनी प्रतिभा के बल पर सैन्य अधिकारी, विमान पायलेट, अच्छी शिक्षिका, व्यवसाय करने वाली, कम्प्यूटर इन्जीनियर, डाक्टर, वकील, राजनीति यहाँ तक कि देश की अर्थव्यवस्था को सम्भालने वाली मन्त्री अर्थात् कोई क्षेत्र अब महिलाओं से अछूता नहीं रह गया है। खेलों में भी स्वर्ण पदक जीतने वाली महिलायें काफी संख्या में है और देश का नाम रोशन कर रही हैं।

किन्तु अभी भी निम्न वर्ग में कन्याओं को पढ़ाया नहीं जाता। छोटी आयु में विवाह कर देते हैं किन्तु अब जरूर एक ऐसा समय आयेगा जब भारत की हर कन्या शिक्षित होकर अपना भविष्य संवार सकेगी। धन्य है स्वामी दयानन्द की दूरदृष्टि।

2/25 आर्य वानप्रस्थ आश्रम
मो0-9760928162

प्रखर व्यक्तित्व

महर्षि दयानन्द के कुछ प्रमुख शास्त्रार्थ

-श्रीमती शोभारानी छाबड़ा

महर्षि दयानन्द सरस्वती को गुरु विरजानन्द से आर्ष ग्रन्थों के सत्य सिद्धान्तों के प्रचार की विशेष प्रेरणा मिली और अपने पूर्ण सामर्थ्य से उन्होंने समाज में सत्य शास्त्रों के सिद्धान्तों का प्रचार किया। महर्षि का मानना था कि सत्योपदेश के अतिरिक्त अन्य कोई भी मनुष्य जाति की उन्नति का कारण नहीं है।

महर्षि चाहते थे कि सब मनुष्य एक ही सत्य, वेद-मत को स्वीकार करें। एक मत हुए बिना मानव जाति अपने मानव जीवन के उद्देश्य को पूरा नहीं कर सकती। यदि सभी सम्प्रदायों के विद्वज्जन ईर्ष्या-द्वेष छोड़कर सत्य का ग्रहण एवं असत्य का त्याग करें तो यह कार्य असाध्य नहीं है। तदनुसार अपने जीवन में अकेले महर्षि ने साहित्य, शंका समाधान शास्त्रार्थ एवं उपदेशों द्वारा पूर्ण प्रयत्न किया। महर्षि सत्य सिद्धान्तों का प्रतिपादन एवं असत्य का खण्डन बड़ी दृढ़तापूर्वक करते थे। लोगों के हृदयों में उनके शब्द घुसकर विचारों में हलचल उत्पन्न कर देते थे। शास्त्रार्थ और शंका-समाधान आदि के प्रभाव द्वारा बहुत से विपक्षी विद्वान भी महर्षि के शिष्य बन जाते थे। ''सत्यार्थ प्रकाश'' की भूमिका में महर्षि लिखते है-

''मनुष्य का आत्मा सत्यासत्य का जानने वाला है तथापि अपने प्रयोजन की सिद्धि हठ दुराग्रह और अविद्या आदि दोषों से सत्य को छोड़कर असत्य की ओर झुक जाता है।''

सत्य सिद्धान्तों के प्रचार-प्रसार के लिये उन्होंने अनेक शास्त्रार्थ किये और वेद के आधार पर यह सिद्ध किया कि ईश्वर निराकार है, वेद ईश्वरीय ज्ञान है, वेद में मूर्तिपूजा नहीं है, ईश्वर सर्व व्यापक है। पुनर्जन्म होता है आदि अनेक विषयों को प्रमाण सहित समझाया। महर्षि ने अनेक स्थानों पर विभिन्न मत के गुरुओं, विद्वानों से शास्त्रार्थ किया है, उनमें से कुछ का वर्णन इस प्रकार है-

1. पादरी ग्रे साहब आदि से अजमेर में शास्त्रार्थ (जून 1866)- 30 मई सन् 1866 को स्वामी जी पुष्कर से अजमेर आये। वहाँ स्वामी जी का पादरी लोगों से मित्रता पूर्ण शास्त्रार्थ हुआ। प्रथम तीन दिन ईश्वर, जीव, सृष्टिक्रम और वेद विषय पर बातचीत रही । चौथे दिन ईसा के ईश्वर होने पर और मरकर जीवित होने और आकाश में चढ़ जाने पर स्वामी जो ने कुछ प्रश्न किये परन्तु पादरी लोग कोई बुद्धि पूर्ण उत्तर नहीं दे सके।

2. पं. रामरत्न से संन्यासी के विषय में प्रश्नोत्तर - अजमेर में ही जून 1866 पं. रामरत्न जो ग्राम रामसर का पटवारी था, उसने संस्कृत में 10 प्रश्न संन्यासियों के विषय में लिखकर भेजे। उसमें एक

प्रश्न यह भी था कि संन्यासी को किसी ग्राम में तीन दिन से अधिक नहीं रुकना चाहिये। स्वामी जी ने उत्तर दिया-**निःसन्देह संन्यासी को एक स्थान पर तीन दिन से अधिक न रहना चाहिये परन्तु जहाँ अन्धकार और अविद्या हो तो वहाँ उपदेश के लिये अधिक दिन तक रुकना उचित है।**

3. कर्णवास में पं. हीरा वल्लभ से शास्त्रार्थ - अनूप शहर के पं. हीरावल्लभ कर्णवास आये। बड़े ठाठ से वे अपने आराध्य देवों की मूर्तियों को एक सुन्दर सिंहासन में सजाकर साथ लाये, यह प्रतिज्ञा करके कि मैं इन देव मूर्तियों को दयानन्द के हाथ से भोग लगवाकर ही उठूंगा। छः दिन तक शास्त्रार्थ होता रहा। छठे दिन पं. हीरावल्लभ ने अपनी हार स्वीकार कर ली। स्वामी जी को हाथ जोड़कर प्रणाम किया व उन देव मूर्तियों को गंगाजल में प्रवाहित कर दिया। इस शास्त्रार्थ का प्रभाव यह रहा कि सैकड़ो मनुष्यों की आस्था मूर्ति पूजा से उठ गयी और बीसियों लोगों ने पं0 हीरावल्लभ का अनुकरण करते हुए अपनी देव मूर्तियाँ गंगा के प्रवाह में डाल दीं।

4. साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती से रामघाट पर शास्त्रार्थ - अगहन मास सन् 1867 में स्वामी जी रामघाट में आये। वहाँ एक साधु कृष्णेन्द्र सरस्वती रहते थे। लोगों ने जाकर उनसे कहा कि एक स्वामी आया है जो गंगादितीर्थ, महादेवादि मूर्ति और भागवत आदि का खण्डन करता है और साधु कृष्णेन्द्र को स्वामीजी से वार्तालाप करने हेतु ले गये। वहाँ एक व्यक्ति ने कृष्णेन्द्र से पूछा- मैं महादेव पर जल चढ़ा आऊँ? तो स्वामीजी बोले- 'वह तो पत्थर है महादेव नहीं।' महादेव को कैलाश में हैं। तब कृष्णेन्द्र ने गीता से प्रमाण दिया-

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम।।

स्वामी जी ने कहा- ईश्वर निराकार है, अवतारधारी नहीं बन सकता। देह धरना केवल जीव का धर्म है। स्वामीजी की जीत हुई।

5. पं0 हलधर ओझा शास्त्री से कानपुर में शास्त्रार्थ - 31 जुलाई 1869 कानपुर नगर में भैरव घाट पर यह शास्त्रार्थ हुआ। इसमें नगर कोतवाल, ज्वाइंट मजिस्ट्रेट, मुख्य न्यायाधीश आदि गणमान्य व्यक्ति उपस्थित थे। करीब 20-25 हजार व्यक्ति उपस्थित थे। प्रातः साढ़े चार बजे से सूर्यास्त तक शास्त्रार्थ चला। शास्त्रार्थ का विषय 'मूर्तिपूजन' था। शास्त्रार्थ संस्कृत में हुआ। मिस्टर थेन साहब बहादुर जो अच्छे संस्कृतज्ञ थे मध्यस्थ नियत हुये।

ओझा ने कहा वेद में प्रतिमा पूजन है की आज्ञा नहीं, तो निषेध कहाँ है? स्वामी जी-जो वेद ने उचित समझा कह दिया और जो नहीं लिखा, वही निषेध है।

ओझा ने कहा- एक भील ने गुरु द्रोणाचार्य की मूर्ति बनाकर सामने रखी और धनुष विद्या सीखी।

स्वामी जी ने कहा, कोई ऋषि मुनि नहीं था। उसको विद्या आने का कारण मूर्ति नहीं वरन् उसका अभ्यास था। शास्त्रार्थ के समय मध्यस्थ मिस्टर थेन ने स्वामी जी के पक्ष में निर्णय दिया और कहा कि दयानन्द सरस्वती साधु की उक्तियां वेदों के अनुकूल थीं।

6. काशीस्थ शास्त्रार्थ - यह शास्त्रार्थ काशी में सम्वत 1926 कार्तिक सुदी 12 मंगलवार को हुआ था। स्वामी दयानन्द सरस्वती एवं की काशी के पं. बाल शास्त्री, स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती, माधवाचार्य एवं पं. ताराचरण भट्टाचार्य के मध्य हुआ। स्वामी दयानन्द सरस्वती का पक्ष पाषाण मूर्ति पूजा का खण्डन विषय और काशी वासी पण्डितों का मण्डन का विषय था। उनको वेद प्रमाण से मूर्ति पूजा का मण्डन करना था परन्तु पाषाण आदि मूर्ति पूजा में वैदिक प्रमाण नहीं है सो नहीं दिखा सके पश्चात् प्रतिमा शब्द से मूर्तिपूजा को सिद्ध करना चाहा वह भी न कर सके। पुनः पुराण शब्द विशेष्य व विशेषण वाची है इस पर स्वामी जी का पक्ष विशेषण ही सिद्ध हुआ । काशी के पण्डितों का मत कि पुराण शब्द विशेष्य वाची है वे सिद्ध नहीं कर सके और नाराज होकर अपशब्द बोलने लगे इसके अतिरिक्त उन्होंने एक पुस्तक स्वामी जी की झूठी निन्दा के लिये काशीराज के छापेखाने से छपवाकर उनकी बदनामी की चेष्टा करते रहे। इतने पर भी स्वामी जी उनके कर्मों पर ध्यान न देकर वेदोक्त उपदेश बराबर देते रहे तथा उनको कई बार यह भी कहा कि यदि आपको मूर्तिपूजा के पक्ष में कोई प्रमाण वेदों से मिला हो तो फिर सभा करके वार्तालाप करो। इसके उत्तर में पण्डित भीमसेन शर्मा ने विज्ञापन छपवा कर प्रचार किया कि स्वामी विशुद्धानन्द सरस्वती एवं बालशास्त्रीजी स्वामी दयानन्द से शास्त्रार्थ करेंगे। परन्तु नियत समय पर उन दोनों में से कोई भी शास्त्रार्थ हेतु उपस्थित नहीं हुआ। अतः यह निश्चय हुआ कि स्वामी दयानन्द सरस्वती जो कहते हैं वही सत्य है।

7. बदायुं में शास्त्रार्थ- अगस्त 1879 यह शास्त्रार्थ पं० राम प्रसाद तथा पं० वृन्दावन आदि के साथ हुआ। सर्व प्रथम पं. रामप्रसाद ने कहा- ईश्वर साकार है और उसमें पुरुषसूक्त की यह ऋचा प्रमाण है-

'सहस्त्रशीर्षा पुरुषः'' इत्यादि (यजु. अध्याय 31 मन्त्र 1) स्वामी जी - सहस्त्र कहते हैं सम्पूर्ण जगत को और असंख्य को यह नहीं कि उसके हजार सिर हजार आँखें हैं। पं. रामप्रसाद जी ने कहा - लक्ष्मी विष्णु की स्त्री है और साकार है। इसमें लक्ष्मी सूक्त प्रमाण है।

स्वामी जी - यह वाक्य संहिता का नहीं है।

पं0 राम प्रसाद- आप कहते हैं वेदों को पढ़ने का अधिकार सबको है। पर वेद पढ़ने का अधिकार केवल द्विजों को और उनमें से भी मुख्य ब्राह्मणों को है।

स्वामी जी- **'यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः'** इस वेद मन्त्र से स्पष्ट है कि वेदों के पढ़ने का अधिकार सबको है।

पण्डित जी - **'इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदम्।'** यजुर्वेद के इस मन्त्र से विष्णु का वामन अवतार सिद्ध होता है।

स्वामीजी- इससे वामनावतार सिद्ध नहीं होता। इसका अर्थ यह है कि परमेश्वर अपनी सामर्थ्य से सब जगत् को तीन स्थानों में स्थापन करके धारण करता है। इस पर पं0 वृन्दावन जी बोले- तो क्या विष्णु साकार नहीं है?

स्वामी- विष्णु के अर्थ करो। यह किस धातु से बना है ?

पं. वृन्दावन जी **'विष्लृ व्याप्तौ'** से विष्णु बनता है अर्थात् जो सर्व व्यापक हो उसे विष्णु कहते हैं फिर जो व्यापक हो वह साकार कैसे हो सकता है। स्वामी जी ने कहा- यजुर्वेद के चालीसवें अध्याय के मन्त्र **''सपर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं''** से सिद्ध है कि सर्वव्यापक परमात्मा कल्याण स्वरूप काया से रहित नाड़ी नस आदि के बन्धन से मुक्त और शुद्ध स्वरूप पापों से न्यारा है। जिसने आदि जगत में अपनी अनादि प्रजा जीवों के लिये वेद विद्या का प्रकाश किया। यह शास्त्रार्थ दो दिन में समाप्त हुआ।

8. हुगली शास्त्रार्थ- 8 अप्रैल 1873, पं0 ताराचरण तर्क रत्न के साथ वृन्दावन चन्द्र मण्डल के बाग में जो कलकत्ता के पास हुगली में था स्वामी दयानन्द सरस्वती से मूर्तिपूजा, एवं योग- सिद्धियों के विषय में काफी विस्तार से चर्चा हुई। जिसमें स्वामी जी ने जान लिया कि ये ताराचरण जी को भी संस्कृत का भी ठीक ज्ञान नहीं है व्यर्थ ही बात-बात में तर्क-वितण्डा करते हैं। स्वामी जी ने समझाया कि अणिमादिक सिद्धियाँ योगी को दिव्य योग सिद्धियों से प्राप्त होती है और अयोगी को कभी नहीं होती।

पाषाण पूजा के विषय में ताराचरण तर्क रत्न ने इस बात को स्वीकार किया है कि पाषाणादिक, मूर्ति पूजन को मैं भी मिथ्या ही जानता हूँ परन्तु जो मैं सत्य-सत्य कहूँ तो मेरी आजीविका नष्ट हो जाये। तथा काशी नरेश महाराज सुनें तो मुझको निकालकर बाहर करें। इससे मैं सत्य-सत्य नहीं कह सकता जैसा कि आप सत्य कहते हैं।

- कुटी सं0 193
आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

आशा की किरण

सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय आवश्यक क्यों?

-स्वामी संकल्पदेव

सत्यार्थ प्रकाश महर्षि दयानन्द की कालजयी रचना है जो मानव मात्र के लिए ऐसा अमृत का प्याला है जिसको पीकर मनुष्य अपने सभी प्रकार के दुःखों से छूटकर अनंत आनंद स्वरूप परमात्मा की अनुभूति कर सकता है। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय इसलिए अत्यन्त आवश्यक हो जाता है क्योंकि आज का मानव क्षणिक सुखों के आकर्षण, विषयों की संलिप्तता, कर्मण्यता के अभाव और कुसंस्कारों के प्रभाव के कारण अपने धर्म से विमुख हो गया है। अधिकतर माता-पिता, विद्यार्थी, नेता, शिक्षक, अधिकारी और अन्य क्षेत्रों के व्यक्ति भी अपनी सोलह संस्कार, पंच महायज्ञों की अनंत ज्ञानमयी गौरवशाली वैदिक परम्परा को भूलकर पाश्चात्य संस्कृति के प्रभाव में अंधकारमय जीवन जीने के लिए विवश से हो गये हैं। इस अन्धकार से बाहर निकलने के लिए सदा से एक ही मार्ग हमारे पूर्वजों ने बताया है जिसको सत्य का मार्ग कहा जाता है। क्योंकि जहाँ सत्य का प्रकाश होता है वहीं अज्ञानता का अंधकार ठहर नहीं सकता है।

सत्यार्थ प्रकाश ग्रन्थ में सृष्टि का स्वरूप क्या है? आत्मा क्या है? परमात्मा क्या है? एक आदर्श ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थी, संन्यासी का जीवन कैसा होता है? धर्म क्या है? राजधर्म क्या है ? वेदों की शिक्षा और महत्त्व क्या है? बन्धन क्या है? मोक्ष क्या है? ब्रह्मचर्य क्या है? सत्यासत्य क्या है इत्यादि प्रश्नों का उत्तर महर्षि दयानंद सरस्वती ने स्पष्टता, तार्किकता और वैज्ञानिकता के साथ दिया है।

ये सभी मनुष्य के ऐसे स्वाभाविक प्रश्न हैं जिनका उत्तर न मिलने पर मनुष्य ईश्वर का अमृत पुत्र होते हुए भी स्वयं को अशांत, दीन-हीन, दुःखी दरिद्र, असहाय अनुभव करता है और कष्टमय जीवन जीते हुए उसका सारा दोष दूसरों पर मढ़कर राग-द्वेष के चक्र में फंसकर जन्मों-जन्मों तक स्वयं को अंधकार में धकेल देता है। **आज की युवा पीढ़ी को पूर्णानन्द, सत्यता और पूर्ण सार्थकता के साथ जीवन जीने के लिए जो मार्गदर्शन चाहिए, वह इस ग्रन्थ में निश्चित रूप से प्राप्त होता है।** अतः सभी जागरूक नागरिकों, माता-पिताओं और युवाओं को अपने समस्त दुःखों का नाश करने और जीवन को आनंद से भरकर इस सृष्टि को आनंद से भरने के लिए सत्यार्थ प्रकाश का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिए।

- स्वामी दर्शनानन्द गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

दा न महिमा	
	1- **दानं महती क्रिया ।** दान निश्चित ही महान क्रिया है।
	2- **दानं दुर्गति नाशनम् ।** दान से दुर्गति का नाश होता है।
	3- **दानं मित्रं मरिष्यतः ।** दान करने वाले का मित्र है।

नतमस्तक विद्वत् प्रवर

महर्षि दयानन्द के बारे में पाश्चात्य विद्वानों के विचार

संग्रहकर्ता - सदानन्द मौर्य

आर्य समाज के संस्थापक महर्षि दयानन्द के प्रति पाश्चात्य विद्वानों ने उनके महान कार्यों के प्रति आस्था प्रकट की है और उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है कुछ विद्वानों के विचार इस प्रकार हैं-

प्रसिद्ध फ्रांसीसी लेखक श्री रोम्या रोलां-

''ऋषि दयानन्द ने भारत के शक्ति शून्य शरीर में अपनी दुर्धर्ष शक्ति अविचलता तथा सिंह पराक्रम फूंक दिए हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती उच्चतम व्यक्तित्व के पुरुष हैं। यह पुरुष सिंह उनमें से एक था जिन्हें यूरोप प्राय: भुला देता है जबकि वह भारत के सम्बन्ध में अपनी धारणा बनाता है, किन्तु योरोप को एक दिन अपनी भूल मानकर उसे याद रखने के लिए बाधित होना पड़ेगा, क्योंकि उसके अन्दर कर्मयोगी विचारक और नेता के उपयुक्त प्रतिभा का दुर्लभ सम्मिश्रण था।

दयानन्द ने अस्पृश्यता का अछूतपन के अन्याय को सहन नहीं किया और उससे अधिक उनके अपहृत अधिकारों का उत्साही समर्थक दूसरा कोई नहीं हुआ। भारत में स्त्रियों की शोचनीय दशा को सुधारने में भी दयानन्द ने बड़ी उदारता व साहस से काम लिया। वास्तव में राष्ट्रीय भावना और जन जागृति के विचार को क्रियात्मक रूप देने में सब से प्रबल शक्ति उसी की थी। वह पुनर्निर्माण और राष्ट्र संगठन के अत्यन्त उत्साही पैगम्बरों में से था।''

प्रसिद्ध जर्मन विद्वान

प्रो. एफ. मैक्समूलर

''स्वामी दयानन्द सरस्वती ने हिन्दू धर्म के सुधार के लिए महान् कार्य किया और जहाँ तक समाज सुधार का सम्बन्ध है। वह बड़े उदार हृदय के थे। वे अपने विचारों को वेदों पर आधारित और उन्हें ऋषियों के ज्ञान पर अवलम्बित मानते थे। उन्होंने वेदों पर बड़े-बड़े भाष्य किये, जिससे मालूम होता है कि वे पूर्ण अभिज्ञ थे। उनका स्वाध्याय बड़ा व्यापक था।''

ब्रिटेन के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री

रेम्जे मैक्डोनल्ड

''आर्य समाज समस्त संसार को वेदानुयायी बनाने का स्वप्न देखता है। स्वामी दयानन्द ने इसको जीवन और सिद्धान्त दिया है। उनका विश्वास था कि आर्य जाति चुनी हुई जाति, भारत चुना हुआ देश और वेद चुनी हुई धार्मिक पुस्तक है।''

मिनिस्टर ऑफ जस्टिस तेहरान, ईरान

श्री रहीमजादा सफीव

''स्वामी दयानन्द के उच्च व्यक्तित्व और चरित्र के विषय में निःसन्देह सर्वत्र प्रशंसा की जा सकती है। वे सर्वथा पवित्र तथा अपने सिद्धान्तों के अनुसार आचरण करने वाले महानुभाव थे। वे सत्य के अत्यधिक प्रेमी थे।''

स्वामी दयानन्द ही पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने ''हिन्दुस्तान हिन्दुस्तानियों के लिए'' का नारा लगाया था। आर्य समाज के लिए मेरे हृदय में शुभ इच्छाएं हैं और उस महान पुरुष के लिए जिसका आप आर्य आदर करते हैं मेरे हृदय में सच्ची पूजा की भावना है।''

श्री ए. ह्यूम

''स्वामी दयानन्द के सिद्धान्तों के विषय में कोई मनुष्य कैसी ही राय कायम कर ले परन्तु यह सबको मान लेना पड़ेगा कि वे एक विशाल और श्रेष्ठ पुरुष थे। अपने देश के लिए गौरव स्वरूप थे। दयानन्द को खोकर भारतवर्ष को बहुत हानि उठानी पड़ी है।''

श्री एस.एल. पोलक

''स्वामी दयानन्द एक महान् आत्मा और निर्भय पुरुष थे। वे अपने धार्मिक विश्वासों पर अटल रहे, इसलिए नहीं कि वे अपने विचारों के कट्टर पक्षपाती थे किन्तु इसलिए कि वे सत्य के परम भक्त थे।''

सर सैयद अहमद खाँ साहिब

''स्वामी दयानन्द महान् संस्कृतज्ञ और वेद ज्ञाता थे। वे विद्वान ही नहीं किन्तु एक श्रेष्ठ पुरुष भी थे। वे परम हंस के गुणों से विभूषित थे। उन्होंने केवल एक ज्योतिर्मय निराकार परमेश्वर की आराधना करने की शिक्षा दी। हमारा स्वामी जी से घनिष्ठ सम्बन्ध था और हम उनका आदर करते थे। वह ऐसे विद्वान् और श्रेष्ठ थे कि अन्य मतावलम्बी उनका मान करते थे।''

श्रीमती खदीजा बेगम

''महर्षि दयानन्द भारत माता के उन प्रसिद्ध और उच्च आत्माओं में से थे जिनका नाम संसार के इतिहास में सदा चमकते हुए सितारों की तरह प्रकाशित रहेगा। वह भारत माता के उन सपूतों में से थे, जिनके व्यक्तित्व पर जितना भी अभिमान किया जाये, थोड़ा है। नेपोलियन और सिकन्दर जैसे अनेक सम्राट एवं विजेता संसार में हो चुके हैं, पर महर्षि उन सबसे बढ़कर थे।''

श्री पीर मुहम्मद यूनिस साहब

''ईसाइयत और पश्चिमी सभ्यता के मुख्य हमले से भारतीयों को सावधान करने का सेहरा यदि किसी व्यक्ति के सिर पर बांधने का सौभाग्य प्राप्त हो तो स्वामी दयानन्द जी की ओर इशारा किया जा सकता है। 19वीं सदी में स्वामी दयानन्द जी ने भारत के लिए जो अमूल्य काम किया है, उससे हिन्दू जाति के साथ-साथ मुसलमानों तथा दूसरे धर्मावलम्बियों को भी बहुत लाभ पहुँचा है।''

कुटी नं0 2/89
शाखा नं0 2, आर्यवानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर

सरस्वती के वरद पुत्र

महर्षि दयानन्द सरस्वती : एक विलक्षण व्यक्तित्व

कीर्तिशेष- डा0 विनोद चन्द्र वेदालंकार

महर्षि दयानन्द सरस्वती का जन्म संवत् 1881 विक्रमी (सन् 1824 ई0) को मौरवी राज्य के टंकारा ग्राम के औदीच्य ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके पिता एक जमींदार थे जो साहूकारा भी करते थे और रियासत की ओर से अपने क्षेत्र में मालगुजारी भी वसूल किया करते थे। वे शिव के उपासक थे। महर्षि का नाम मूलशंकर रखा गया था। पांच वर्ष की आयु में ही उन्हें देवनागरी अक्षरों का अभ्यास करा के श्लोक, मंत्र, स्तोत्रादि कण्ठस्थ कराने आरम्भ कर दिये गये थे। आठ वर्ष की आयु में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और उस समय के ब्राह्मण परिवारों की परम्परा के अनुसार संस्कृत व्याकरण, संस्कृत भाषा, गायत्री मंत्र, संध्यावन्दन और शास्त्रों की शिक्षा दी जाती रही। यजुर्वेद संहिता का भी अभ्यास कराया गया। चूंकि पिता कर्सन जी लाल जी त्रिवेदी कट्टर शैव भक्त थे, अत: वे पुत्र को भी शिव का उपासक बनाना चाहते थे और उनकी इच्छा थी कि उनका पुत्र शिव की पूजा तथा धार्मिक अनुष्ठानों में प्रवीण हो जाये। अत: पिता ने बालक मूलशंकर को शिवभक्ति के प्रति प्रेम उत्पन्न कराने के लिए पार्थिव पूजा का उपदेश दिया तथा शिव-माहात्म्य की अनेक कथाएं सुनाकर उसके मन में शिवरात्रि के व्रत के लिए श्रद्धा उत्पन्न की। परिणामत: संवत् १८९४ की माघ वदी १४ (सन् १८३७ ई०) को शिवरात्रि के दिन माता के मना करने पर भी मूलशंकर पिता के साथ शिवमन्दिर जाकर शिवरात्रि का व्रत रखने के लिए उद्यत हो गया। रात्रि में वहां सभी उपासक एकत्र हुए और शिवपूजन के बाद सभी सो गये। परन्तु श्रद्धा से प्रेरित बालक मूलशंकर आंखों पर छींटे डाल-डालकर जागता रहा तथा उसकी आँख शिव की मूर्ति पर लगी रही। कुछ क्षण बाद मन्दिर में सन्नाटा हो जाने पर मूलशंकर ने देखा कि कुछ चूहे बिलों से निकलकर मूर्ति के इर्द-गिर्द तथा नीचे ऊपर घूम रहे हैं और नैवेद्य के रूप में अर्पित दानों को खा रहे हैं। वह यह देख स्तम्ब्ध रह गया, उसने सोचा कि 'मन्दिर में पूजित शिव यह शिव वह शिव कदापि नहीं हो सकता जो त्रिशूल द्वारा दानवों का संहार करता है' और जिसकी अनुपम शक्ति की कथाएं उसने अपने पिता से सुनी थीं। उसने पिता को जगाकर अपनी शंका का निवारण करना चाहा, पर पिता की युक्तियाँ उसे सन्तुष्ट नहीं कर सकीं। परिणामत: मूर्तिपूजा के प्रति उसकी आस्था में शिथिलता आ गयी और उसने दृढ़ संकल्प किया कि **जब तक वास्तविक कल्याणकारी शिव के दर्शन नहीं कर लूंगा तब तक ऐसी ब्राह्य पूजा के समीप नहीं फटकूंगा।** चौदह वर्ष की आयु में मूलशंकर के मन में मूर्ति पूजा के प्रति जो आशंका उत्पन्न हुई थी उसी ने आगे चलकर उसे इस पूजा-पद्धति का प्रबल विरोधी बना दिया।

कालांतर में मूलशंकर के जीवन में दो अन्य ऐसी घटनाएं हुई जिन्होंने उसमें आमूल-चूल परिवर्तन ला दिया। जब वे सोलह वर्ष के थे, उनकी छोटी बहिन को हैजा हुआ और अथक प्रयत्न करने पर भी देखते-देखते चार घंटों के अन्दर उसका प्राणान्त हो गया। विस्मित बालक चित्र लिखित सा खड़ा रह गया, सारा परिवार रो रहा है और उसके आंसू नहीं निकलते। देखने वाले उसे पाषाण हृदय कहते हैं, परन्तु यह मन ही मन सोच रहा है कि **एक दिन मुझे भी मृत्यु का ग्रास बनना पड़ेगा, मृत्यु से होने वाली इस मानव-यन्त्रणा को दूर करने के उपाय कहाँ तलाश करूँ, निःश्रेयस रूप मृत्यु को कैसे प्राप्त करूँ और उसके साधनों को कैसे जानूँ।** उसी समय मूलशंकर ने निश्चय कर लिया कि चाहे कुछ भी हो, अवश्य ही मोक्ष के साधनों की खोज करुँगा। इसी के साथ उसे वैराग्य हो गया और वह आत्मचिन्तन में लग गया।

इस घटना के तीन वर्ष बाद मूलशंकर के विद्वान तथा कृपालु चाचा को भी उसी रोग ने आ घेरा और अन्ततः उनका भी निधन हो गया। इस बार बालक मूलशंकर ने रो-रोकर आँखें सुजा लीं, उसे ऐसा लगने लगा कि चाचा की तरह मैं भी मर जाऊँगा। संसार की असारता का चित्र खिंच गया और वह मित्रों और पण्डितों से अमर होने का उपाय पूछने लगा। जब उन्होंने योगाभ्यास की ओर संकेत किया तो मूलशंकर के मन में घर छोड़ने का विचार उत्पन्न हो गया। अपने पुत्र को सांसारिक जीवन से विरक्त होते देखकर कर्सन जी लाल त्रिवेदी ने उसे जमींदारी की देख-रेख में लगाने तथा शीघ्र विवाह-बंधन में बांधने का असफल प्रयास किया। परन्तु मोक्ष-प्राप्ति के अपने निश्चय पर दृढ मूलशंकर ने घर छोड़ने का निश्चय कर लिया और सन् १८४६ ई० (सम्वत् १९०३ विक्रमी) में बिना किसी से कुछ कहे वह चुपचाप घर से चल पड़ा उस सच्चे शिव की खोज में, **जिसे जानकर ही मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकता है और जीवन-मरण के बन्धन से मुक्त होकर मोक्ष पा सकता है।**

गृह-त्यागकर मूलशंकर ने ब्रह्मचर्य व्रत की दीक्षा ले ली थी और अपना नाम शुद्ध चैतन्य ब्रह्मचारी रख लिया। उनके जीवन के अगले १४ वर्ष गुरुओं की खोज, विद्याभ्यास, कष्ट सहने और पर्यटन में व्यतीत हुए। उन्होंने मधुकरी वृत्ति से ज्ञान- अर्जन किया। जहाँ किसी प्रसिद्ध गुरु का नाम सुना उसके पास गये और उससे जो मिल सका वह ग्रहण किया। २४ वर्ष की आयु में नर्मदा नदी के तट पर भ्रमण करते हुए स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास आश्रम की दीक्षा ली और स्वामी दयानन्द सरस्वती के नाम से विख्यात हुए। संन्यास लेकर स्वामी दयानन्द ने सच्चे योगियों की खोज में गुजरात, राजस्थान, राजपूताना, मालवा, हरिद्वार आदि के अतिरिक्त हिमालय में भी दूर-दूर तक भ्रमण किया, नर्मदा नदी के साथ-साथ और उसके निकटस्थ विन्ध्याचल के क्षेत्र में भी पर्यटन किया, पर उन्हें कोई ऐसा गुरु नहीं मिला जिससे वे पूर्ण संतोष अनुभव कर सकते। उन्हें सभी तरह के साधु, संन्यासी और योगी मिले। सबसे उन्होंने कुछ न कुछ सीखा, धीरे-धीरे उनके ज्ञान-चक्षु खुलते गये। अन्त में सन् १८६० ई०

(सम्वत् १९१७ विक्रमी) में मथुरा में उनका एक ऐसे गुरु से सम्पर्क हुआ जो महान् विद्वान, सच्चे योगी एवं वास्तविक संन्यासी थे। इनका नाम दण्डी स्वामी विरजानन्द था। स्वामी दयानन्द ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया और उनसे आर्ष ग्रन्थों का अध्ययन आरम्भ किया। दण्डी स्वामी विरजानन्द जी की मान्यता थी कि संस्कृत व्याकरण तथा वेदों के अभिप्राय को सम्यक् समझने के लिए ऋषि प्रणीत (आर्ष) ग्रन्थों का ही आश्रय लिया जाना चाहिए। वे संस्कृत व्याकरण के अध्ययन के लिए पाणिनि की अष्टाध्यायी तथा पंतजलिकृत महाभाष्य का प्रयोग करते थे तथा वेदों का यथार्थ अर्थ जानने के लिए निघण्टु, निरुक्त आदि वेदांगों का उपयोग करते थे। इसी के अनुरूप स्वामी दयानन्द ने उनसे तीन वर्ष तक व्याकरण का गंभीर अध्ययन करने के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु को परखने की आर्ष दृष्टि प्राप्त की और आर्ष ग्रन्थों का महत्त्व जाना।

स्वाध्याय का समय समाप्त होने पर शिष्य ने गुरु से जाने की अनुमति प्राप्त करते हुए उनके समक्ष भेंट में लौंग रख दिये। गुरु बोले- ''भोले शिष्य! क्या इस भेंट के लिए मैंने परिश्रम किया था?'' उत्तर मिला- ''भगवन ! यह तन और मन आपके हवाले है। आज्ञा कीजिए जो कुछ शक्ति में है उसके पालने में यह सिर आगे है।'' गुरु विरजानन्द ने अन्तिम आदेश दिया- **''देश का उपकार करो, सत्य शास्त्रों का उद्धार करो, मतमतान्तरों की अविद्या को मिटाओ और वैदिक धर्म का प्रचार करो।''** दयानन्द ने अपना सिर दण्डी स्वामी विरजानन्द के चरणों पर रख दिया। गुरु ने हार्दिक आशीर्वाद दिया और चलते हुए एक अमूल्य बात यह कह दी, कि मनुष्यकृत ग्रन्थों में परमात्मा और ऋषियों की निन्दा है. ऋषिकृत ग्रन्थों में नहीं, इस कसौटी को हाथ से न छोड़ना। अंततः सन् १८६३ ई० (संवत् १६२० विक्रमी) में वे गुरु जी की अनुमति पाकर मथुरा से विदा हुए। **अब उन्हें सर्वशक्तिमान परमेश्वर के उस रूप का बोध हो गया था जो 'शिव' (मंगलमय) है और जिसकी उपासना द्वारा सम्पूर्ण विश्व एवं मानव समाज का हित-कल्याण हो सकता है।**

महर्षि दयानन्द की मान्यता थी कि जब तक वेदों का समग्र रूप से अनुशीलन नहीं कर लेंगे तब तक उनके लिए गुरु विरजानन्द के आदेश का सुचारू रूप से पालन कर सकना सम्भव नहीं होगा। यही कारण था कि वे मूल वेद संहिताओं को प्राप्त करने तथा आर्ष शैली से उनका अध्ययन करने के लिए उत्सुक थे। सन् १८६३ से १८६६ तक का समय उन्होंने इसी कार्य में बिताया। उन्होंने वेद भी प्राप्त कर लिये, उनका सम्यक् प्रकार से अनुशीलन भी कर लिया। परिणामतः वे उन मन्तव्यों और सिद्धान्तों पर पहुंचने में समर्थ हुए जिसका प्रतिपादन उनके द्वारा सत्यार्थप्रकाश एवं ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका प्रभृति ग्रन्थों में किया गया था और जिनके प्रचार-प्रसार हेतु आर्यसमाज की स्थापना की गयी थी।

अप्रैल १८६३ ई० (वैशाख सम्वत् १९२० विक्रमी) को स्वामी दयानन्द मथुरा से आगरा गये और वहां से ग्वालियर, करौली, जयपुर, पुष्कर और अजमेर गये। इस यात्रा के दौरान उन्हें विभिन्न

सम्प्रदायों-इसाइयों, मुसलमानों आदि के निकट सम्पर्क में आने तथा उनके आचार्यों से विचार विनिमय करने का अवसर मिला, जिसके परिणामस्वरूप उन्हें अपने विचारों को परिष्कृत करने में भी सहायता मिली। तीन वर्ष के लगभग वे उपर्युक्त क्षेत्रों में परिभ्रमण करते हुए धर्मप्रचार और समाज सुधार के कार्यों में व्यस्त रहे।

सन् १८६७ (विक्रमी संवत् १९२४) में हरिद्वार में होने वाले, कुम्भ मेले में सम्मिलित हो गये और वहां हिन्दू जाति में फैले पाखण्ड के विरोध में 'पाखण्ड-खण्डिनी पताका स्थापित की'। उस समय तक उनके विचार पर्याप्त रूप से परिपक्व हो चुके थे और उन्होंने अनेक मन्तव्यों का परित्याग कर दिया था, जिनका वे पूर्व के वर्षों में सार्वजनिक रूप से प्रतिपादन किया करते थे। मूर्तिपूजा आदि कुरीतियों का प्रबल खण्डन प्रारम्भ हो गया। सारे कुम्भ मेले में धूम मच गयी और सभी पंथों के लोग उनके दर्शनों के लिए आने लगे। महर्षि दयानन्द ने मठाधीश संन्यासियों को निमंत्रण दिया कि वे उनके साथ मिलकर सत्य का प्रचार करें, परन्तु किसी ने भी उनका साथ नहीं दिया। वे अति व्यग्र हो गये और अंतिम व्याख्यान देते - देते उनके कण्ठ से आर्तनाद निकल पड़ा और **'सर्व वै पूर्ण स्वाहा'** कहकर पुस्तकें, बर्तन, पीताम्बरी धोतियाँ, रेशमी वस्त्र, दुशाले, नकदी आदि सब कुछ बाँटकर शरीर पर मात्र एक कौपीन धारण कर सत्य के प्रचार के लिए प्रस्थान किया। हरिद्वार से वे सीधे ऋषिकेश पहुँचे, फिर लौटकर गंगा किनारे जो यात्रा आरम्भ की तो उसी अवस्था में सात वर्ष तक भ्रमण करते रहे। वे शुक्रताल (मुजफ्फरनगर), परीक्षितगढ़ और गढ़मुक्तेश्वर होते हुए कर्णवास पहुंचे। इसके बाद वे अनूपशहर, बेलोन, रामघाट, अतरौली, छलेसर, सोरों, कासगंज, फर्रुखाबाद, कन्नौज व कानपुर पहुँचे। इन सभी स्थानों पर बड़ी संख्या में लोग उनके प्रवचन का लाभ उठाते। कुछ स्थानों पर पण्डितों से शास्त्रार्थ भी किये। कानपुर से वे काशी गये। काशी में उन्होंने १७ नवम्बर १८६९ को काशी नरेश महाराजा ईश्वरीप्रसाद नारायण सिंह की अध्यक्षता में पौराणिक पण्डितों से यह सुप्रसिद्ध शास्त्रार्थ किया जिसके कारण सर्वत्र उनके पाण्डित्य की धाक जम गयी थी। इस शास्त्रार्थ में सौ से अधिक पंडित एकत्र थे। महर्षि दयानन्द का कथन था कि मूर्ति-पूजा वेदविहित नहीं है। अत्यधिक तर्क-वितर्क तथा वादविवाद हुआ। अंतत:काशी के पंडितों को पराजय का मुख देखना पड़ा और स्वामी जी को विजयश्री प्राप्त हुई। इसके अतिरिक्त स्वामी जी ने अन्य अनेक स्थानों पर भी शास्त्रार्थ किये, जिनमें पण्डित अम्बादत्त एवं पण्डित हीरावल्लभ से कर्णवास में, पण्डित कृष्णानन्द से रामघाट में, पण्डित उमादत्त से ककोड़े के मेले में, पण्डित कृष्णानन्द से रामघाट में, पंडित हलधर ओझा से कानपुर में, पण्डित हरजसराय से प्रयाग में और पण्डित दुर्गादत्त से डुमरांव में हुए शास्त्रार्थ उल्लेखनीय हैं। इन सभी शास्त्रार्थों में हजारों की संख्या में लोग उपस्थित होते थे। कुछ शास्त्रार्थ ऐसे भी थे, जिनकी अध्यक्षता उच्च राजकीय पदाधिकारियों द्वारा की गई थी।

इस दौरान गंगा के निकटवर्ती क्षेत्रों में प्रचार-प्रसार करते हुए महर्षि दयानन्द ने शिक्षा में आर्ष ग्रन्थों एवं वेदों को प्रमुखता देने के उद्देश्य से उत्तर प्रदेश के अनेक स्थानों पर पाठशालाएं स्थापित की। इन पाठशालाओं में ब्रह्ममुहूर्त में जागने तथा संध्या-हवन करने की अनिवार्यता थी। इन पाठशालाओं के माध्यम से स्वामी जी यथार्थ आर्य धर्म की स्थापना के लिए वेदों के निष्णात विद्वानों की आवश्यकता की आपूर्ति करना चाहते थे। उनके द्वारा पहली पाठशाला सन् १८६९ ई० में फर्रुखाबाद में स्थापित की गयी। इसके बाद कासगंज, मिर्जापुर, छलेसर में भी इस प्रकार की पाठशालाएं खोली गई। इनमें अष्टाध्यायी, महाभाष्य, मनुस्मृति और वेदों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। इनमें शिक्षा एवं भोजन निःशुल्क था। सन् १८७३ ई० में एक पाठशाला 'सत्यशास्त्र पाठशाला' के नाम से काशी में भी स्थापित की गयी। परन्तु इन पाठशालाओं के लिए पौराणिक एवं रूढ़िवादी संस्कारों एवं परम्पराओं से मुक्त एवं वैदिक धर्म में आस्था रखने पाले सुयोग्य विद्वानों की अनुपलब्धता के कारण ये पाठशालाएं अधिक समय तक नहीं चल पायीं।

काशी से स्वामी जी मुगलसराय, मुंगेर, आरा, पटना, भागलपुर होते हुए १६ दिसम्बर १८७२ को कलकत्ता पहुंचे। आरा में उन्होंने आर्य धर्म के प्रचार तथा हिन्दुओं में प्रचलित कुप्रथाओं एवं कुरीतियों में सुधार करने के उद्देश्य से एक सभा की स्थापना की, जो कुछ समय तक ही चली। स्वामी जी के कलकत्ता आगमन का समाचार यहां विभिन्न समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। इसे पढ़कर सर्वसाधारण जनता, संस्कृत भाषा एवं शास्त्रों के प्रकाण्ड विद्वान, ब्राह्मसमाज जैसी सुधारवादी संस्था के नेता एवं प्रचारक एवं अन्य सम्भ्रान्तजन बहुत बड़ी संख्या में स्वामी जी के दर्शनों तथा उनके प्रवचनों को सुनने के लिए आने लगे। इनमें राजा शौरेन्द्र मोहन टैगोर, श्री देवेन्द्रनाथ टैगोर, श्री केशवचन्द्र सेन, श्री ईश्वरचन्द्र विद्यासागर, सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ श्री रमेशचन्द्र दत्त, श्री राजेन्द्र लाल मिश्र, श्री प्रतापचन्द्र घोष आदि प्रमुख थे। इन सभी से स्वामी जी की विविध विषयों पर ज्ञानचर्चा एवं विचार विनिमय हुआ करता था। कलकत्ता में स्वामी जी एक वैदिक विद्यालय खोलना चाहते थे, पर इस विचार को व्यापक समर्थन न मिलने के कारण कार्य रूप नहीं दिया जा सका। तीन मास से अधिक समय तक कलकत्ता में निवास कर स्वामी जी ने १ अप्रैल १८७३ ई० को हुगली के लिए प्रस्थान किया। यहां दस दिन के प्रवास-काल में उन्होंने एक ईसाई पादरी श्री लाल बिहारी के साथ वर्ण-भेद विषय पर विचार-विनिमय किया तथा वैदिक धर्म के अनुसार वर्णभेद का आधार जन्म नहीं है अपने इसी मन्तव्य का प्रतिपादन किया। यहां उनका काशी नरेश के राजपण्डित श्री ताराचरण तर्कवाचस्पति के साथ मूर्तिपूजा विषय पर शास्त्रार्थ हुआ। हुगली से स्वामी जी वर्दवान गये और कुछ दिन के प्रवास के बाद लगभग १८ महीने तक उन्होंने भागलपुर, पटना, छपरा, आरा, डुमरांव, मिर्जापुर, इलाहाबाद, कानपुर, लखनऊ, फर्रुखाबाद, कासगंज, छलेसर, अलीगढ़, हाथरस आदि की यात्रा की। इस दौरान स्वामी जी ने यह अनुभव किया कि अपने विचारों और मन्तव्यों को पुस्तक के रूप में प्रकाशित करना चाहिए ताकि जनसामान्य उनका

परिचय पा. सके। इसी का परिणाम था कि उन्होंने राजा जयकिशनदास जी की प्रेरणा से 'सत्यार्थप्रकाश' नामक ग्रन्थ तैयार किया। उपर्युक्त उद्देश्य की पूर्ति हेतु वे एक समाचारपत्र भी प्रकाशित करना चाहते थे, पर यह संभव नहीं हो सका। स्वामी जी अपने प्रचार कार्य को स्थायित्व प्रदान करने के लिए एक सभा की स्थापना करना चाहते थे- आरा और काशी में आर्यसभा की स्थापना की, पर सभाएं कुछ ही समय तक चलीं। अब उन्होंने अपनी जीवन शैली भी बदल ली- वे मात्र कौपीन धारण करने के बजाए वस्त्र धारण करने लगे, यथावश्यक पुस्तकें भी साथ रखते थे तथा साथ में एक सेवक भी रहने लगा। उन्हें जहां कहीं जाना होता उसका कार्यक्रम पहले से तैयार हो जाता था। सर्वसाधारण में सत्य धर्म के प्रचार के निमित्त अब वे हिन्दी में भी व्याख्यान देने लगे तथा हिन्दी में ही लोगों से विचारविमर्श भी करने लगे। वस्तुतः अब उन्होंने एक महान् क्रान्तिकारी सुधारक का रूप धारण कर लिया था।

२६ अक्टूबर १८७४ ई० को स्वामी जी बम्बई पहुंचे तथा अगले १८ महीनें वे गुजरात एवं महाराष्ट्र के विभिन्न नगरों-बम्बई, बड़ौदा, राजकोट, अहमदाबाद एवं पूना में प्रचार कार्य करते रहे। उन्होंने राजकोट में पहले आर्यसमाज की स्थापना की, पर यह समाज अधिक समय तक नहीं चल सकी। इसके बाद उन्होंने १० अप्रैल १८७५ ई० को बम्बई में आर्य समाज स्थापित की। स्वामी जी द्वारा रोपित यह आर्यसमाज रूपी पौधा उत्तरोत्तर वटवृक्ष की भांति वृद्धि करता गया और अब संपूर्ण विश्व में इसकी हजारों शाखा प्रशाखाएं व्याप्त हो गयी हैं। सन् १८७६ ई० में स्वामी जी ने उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद, बनारस, जौनपुर, अयोध्या आदि शहरों में वैदिक धर्म का संदेश प्रचारित किया। जनवरी १८७७ ई० में लार्ड लिंटन द्वारा महारानी विक्टोरिया द्वारा भारत की साम्राज्ञी का पद ग्रहण करने के उपलक्ष्य में दिल्ली में एक दरबार का आयोजन किया गया। इस अवसर पर उपस्थित गणमान्य व्यक्तियों से भारत की समुन्नति हेतु विचार विमर्श करने के उद्देश्य से स्वामी जी दिल्ली पहुँचे। स्वामी जी इस मौके पर उपस्थित राजा-महाराजाओं, पण्डितों आदि को सम्मिलित करते हुए एक सार्वभौम सभा का आयोजन करना चाहते थे। पर उन्हें इसमें सफलता नहीं मिली। स्वामी जी का विचार था कि देश की उन्नति तभी संभव है जबकि इनके परस्पर विरोधों का अन्त कर एक ऐसे धर्म की स्थापना की जाये जिसके मन्तब्य सबको समान रूप से स्वीकार्य हों तथा जिसमें साम्प्रदायिक संकीर्णता का सर्वथा अभाव हो। इसी उद्देश्य से उन्होंने श्री बाबू केशवचन्द्र सेन (ब्राह्मसमाज, कलकत्ता), बाबू नवीनचन्द्र राय (ब्राह्मसमाज लाहौर), श्री सैयद अहमद खाँ (अलीगढ़), मुंशी कन्हैयालाल अलखधारी (पंजाब), बाबू हरिश्चन्द्र चिन्तामणि (आर्यसमाज, बम्बई) तथा मुंशी इन्द्रमणि (मुरादाबाद) का एक सम्मेलन अपने निवास स्थान पर आयोजित किया। परन्तु उनका यह प्रयास सफल नहीं हो पाया।

दिल्ली दरबार में उपस्थित पंजाब के कतिपय संभ्रान्त व्यक्तियों के आग्रह पर स्वामी जी ने पंजाब जाना स्वीकार कर लिया। वे दिल्ली से मेरठ, चांदपुर, सहारनपुर होते हुए ३१ मार्च १८७७ ई० को

लुधियाना पहुंचे। अपने सोलह महीने के पंजाब-प्रवास के दौरान स्वामी जी ने लगभग आठ महीने लाहौर और अमृतसर में व्यतीत किये तथा शेष समय रावलपिण्डी, जालन्धर, मुलतान, गुजरांवाला, लुधियाना, जेहलम, गुरदासपुर, फिरोजपुर और वजीराबाद में प्रचार कार्य में तत्पर रहे।

सन् १८७४ से स्वामी जी ने ग्रंथ रचना के कार्य में विशेष तत्परता प्रदर्शित करनी प्रारम्भ की और अगले दो-तीन वर्षों में उनके कितने ही महत्त्वपूर्ण ग्रंथ प्रकाशित हुए। इनमें सबसे अधिक महत्त्व का ग्रंथ सत्यार्थप्रकाश था, जिसे स्वामी जी ने सितम्बर १८७४ में लिखवाना शुरू किया था। सत्यार्थप्रकाश के रूप में एक ऐसा ग्रंथ सन् १८७५ में ही प्रकाशित हो गया था, जिसमें स्वामी जी के मन्तव्य भली-भांति प्रतिपादित थे।

जब स्वामी जी बम्बई तथा गुजरात-काठियावाड़ में धर्म प्रचार के लिए गये, तो वहाँ की विशेष आवश्यकताओं को दृष्टि में रखकर उन्होंने तीन पुस्तकें लिखीं, जिनके नाम ''बल्लभाचार्यमतखण्डन'' (१८७४ ई०), शिक्षापत्री ध्वान्तिनिवारण (१८७६ ई०) और वेदान्त ध्वान्तनिवारण (१८७६ ई०) हैं। ये तीनों पुस्तकें प्रायः खण्डन के प्रयोजन से लिखी गयी थीं, पर इस काल में स्वामी जी ने तीन ऐसे ग्रंथ भी लिखे व प्रकाशित कराये थे, जिनका आर्यसमाज में सभासदों व अन्य आर्यजनों के लिये विशेष उपयोग था। ये ग्रंथ ''आर्याभिविनय'', ''पंचमहायज्ञ-विधि'' और ''संस्कार विधि'' हैं। आर्याभिविनय में ऋग्वेद और यजुर्वेद के एक सौ सात मंत्र अर्थसहित संकलित किये गये हैं। ''संध्या'' के अतिरिक्त यह अन्य पुस्तक है, जिसका उपयोग ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना तथा उपासना के लिए किया जा सकता है। हिन्दुओं (आर्यों) के धार्मिक साहित्य में इसका अपना विशिष्ट स्थान है और यह एक उत्कृष्ट प्रार्थना पुस्तक है। इसका प्रकाशन १८७५ ई० में बम्बई में हो गया था। संस्कार-विधि में गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक सोलह संस्कारों का प्रतिपादन है। गृहस्थों के लिए यह अत्यन्त उपयोगी ग्रंथ है, क्योकि संस्कारों का मानव जीवन के साथ घनिष्ठ संबंध है और सब कोई धार्मिक संस्कारों का विधिवत अनुष्ठान करना आवश्यक मानते हैं। पंचमहायज्ञ-विधि में उन यज्ञों के अनुष्ठान की विधि दी गयी है. जिन्हें गृहस्थी को प्रतिदिन करना चाहिए। यह भी १८७५ ई० में बम्बई से प्रकाशित हो गयी थी। इस प्रकार बम्बई से उत्तरी भारत के लिये प्रस्थान करने से पूर्व ही स्वामी जी ने उन ग्रंथों की रचना कर दी थी, जिन्हें पढ़कर सब आर्य अपने धर्म के मन्तव्यों को जान सकते हैं और धार्मिक कर्मकाण्ड का विधिवत् अनुष्ठान करते हुए ईश्वर की स्तुति प्रार्थना और उपासना में प्रवृत्त रह सकते हैं। पर इनके साथ स्वामी जी के साहित्य सृजन का कार्य समाप्त नहीं हो गया। वेदभाष्य सदृश महत्वपूर्ण कार्य अभी शेष था। पर उसे भी इस समय स्वामी जी प्रारम्भ कर चुके थे।

महर्षि काव्य वाटिका

महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई

डॉ0 प्रशस्यमित्र शास्त्री

दिखाया मार्ग जिसने जग में वैदिक धर्म का सच्चा।
सभी थे चल पड़े जिस पर युवा बूढ़ा हो या बच्चा।
धर्म है एक सबका मनुजता को जो सिखाता है।
दया उपकार सात्त्विक भावना मन में बढ़ाता है।
हृदय में भर गया उल्लास खुशियाँ सब जगह छाई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई ।। 1 ।।

किया उद्धार विधवाओं का दीनों का दरिद्रों का,
कहा शिक्षा में है अधिकार सब महिला व शूद्रों का।
नहीं है ऊँच कोई जन्म से या नीच है कोई।
सुकर्मों या कुकर्मों से जनों को तोल लो भाई।
विषमता की सभी जन-मन में जिसने पाट दी खाई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई ।।2।।

अनेकों खुल गए गुरुकुल वेद, संस्कृत पढ़ाने को।
महर्षि की कृपा से ज्ञान की गंगा बहाने को।
किया है भाष्य वेदों का सरलता से बताने को,
दिया है मन्त्र जीवन को सुगमता में बिताने को।
यहाँ अधिकार है शिक्षा में सबका भेद ना कोई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।3।।

लगाते भीड़ मन्दिर में पटकते पत्थरों पर सिर,
अवैदिक मूर्ति पूजा में लगे रहते जहाँ फिर फिर।
ग्रहों से जो डराते भाग्य हाथों में बताते थे ।। 4 ।।

फलित ज्योतिष के काले कारनामें भी दिखाते थे।
मिटाकर यह सभी पाखण्ड जिसने दीप्ति दिखलाई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।5।।

किया है भाष्य वेदों का रची संस्कार की विधियाँ,
पुराने आर्ष ग्रन्थों की हमें दी कीमती निधियाँ।
हवन-सन्ध्या महायज्ञों की विधियाँ जिसने सिखलाई,
महत्ता वेद उपनिषदों की भी थी जिसने बतलाई।
ऋणों का हम कभी भी उसके कर सकते न भरपाई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।6।।

चलाकर वेद शास्त्रों की कसौटी का सरल चरखा,
मतों की सम्प्रदायों की मान्यताओं को जो परखा।
वहीं था दूरद्रष्टा सत्य के सिद्धान्त का ज्ञाता।
सही मायने में भारत वर्ष का था भाग्य निर्माता।
प्रकाशित कर दिया सत्यार्थ हम सबको समझ आई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।7।।

जहाँ सब और गुरुडम ढोंग वा पाखण्ड छाया था,
कुतर्कों अन्धविश्वासों का जो सैलाब आया था।
महर्षि भिड़ गए सबसे सदा निर्भीक हो करके,
पुरातन बेड़ियों को काट नव-जीवन दिखा करके।
हटा अज्ञान से सबको ज्ञान की राह दिखलाई।
महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।8।।

विदेशी दासता की शृंखला को तोड़ देने को, दिया स्वाधीनता का मन्त्र जिसने भारतीयों को।
विदेशी राज कितना भी सुखद सुन्दर रहे सच्चा, नहीं होता कभी भी किन्तु अपने राज से अच्छा।
अमर है नाम स्वामी का न उसके तुल्य है कोई। महर्षि श्री दयानन्द की शताब्दी दूसरी आई।।9।।

कृतज्ञता

प्रभु तुम कितने महान हो

कार्यालय प्रस्तुति

तुम्हीं मेरे प्राण हो, अरमान हो।
प्रभु तुम कितने महान हो।
बन सूरज जब तुम विहँसते हो।
धूप खिल-खिल जाती
चाँद बन कर मुस्कुराते हो तो
चाँदनी मचल-मचल जाती
तुम्हीं मेरे जीवन के स्वाभिमान हो
प्रभु तुम कितने महान हो।

हाथ हिलाकर में पल्लव तुम्हीं को बुलाते हैं
मचलते हुए ये भौरें तुम्हारा यशोगान गाते हैं।
तुम्हारे तन की सुगन्ध हर फूल में समाई हे।
तुम्हारे मन की पीड़ा हर जलविन्दु ने पाई है।
तुम अनन्त भूमंडल, सिन्धु समान हो
अतिमोहक प्रभु तुम कितने महान हो।

तुम्हें पाने की खुशी में ये तारे टिमटिमाते हैं।
तुम्हारी याद में ये ओंस कण आँसू बहाते हैं।
झलक पाने उषा तुम्हारी, झरोखे से झाँकती है
होले-होले फिर वही दिन में धूप बन जाती है।
सच कहूँ तो तुम मेरे जीवन की साँस हो
प्रभु तुम कितने महान हो।

तुम्हारे गरजने से ये धरती रो पड़ती है
तुम्हारी मुस्कान से ये धरती मुस्कुराती है।
सब कुछ दिया तुमने प्राणियों को
अन्न, जल और अनगिनत साँसें
तुम्हीं धड़कते हो मेरी धड़कन में
तुम्हीं प्राणों से समाये हो
मेरी जीवन नैया के तुम्हीं कर्णधार हो
प्रभु तुम कितने महान हो।

रचनाकार- सुरेन्द्र कुमार शर्मा

धवल कीर्ति

दयानन्द ऋषिराज महान्

-श्री राधेश्याम 'आर्य' विद्यावाचस्पति

जीवन ऋषि का था उज्ज्वल,
था चरित्र गंगा सा निर्मल,
कीर्ति विकीर्ण दिशाओं में जो
रजत चांदनी सदृश धवल,
प्रभा मण्डित कर्म तुम्हारे
वसुन्धरा पर हैं छविमान
दयानंद ऋषिराज महान् ॥1॥

सोया राष्ट्र जगाने वाले,
वेद ध्वजा लहराने वाले,
सत्य, सनातन धर्म वेद की राह
भू को फिर दिखलाने वाले,
पतितों का उद्धार किया
स्थिर को किया पुनः गतिमान।
दयानंद ऋषिराज महान् ॥2॥

संत्रस्तों को साहस देकर,
मनुष्यता को निर्भय कर,
जाग्रत किया जगत को सारे
वेदों की विद्या लेकर,
गहन तमिस्रा अन्धकार से
ग्रसित, किया भू ज्योतिर्मान।
दयानंद ऋषिराज महान् ॥3॥

अनुपमेय था वह व्यक्तित्व,
दिव्य समग्र रहा कर्त्तव्य,
बड़े-बड़े विद्वान् पराजित हुए
तुम्हारा सुन वक्तृत्व,
मानव की सम्पूर्ण प्रगति हित
किया अलौकिक अनुसंधान।
दयानंद ऋषिराज महान्॥4॥

दिव्य दिया सत्यार्थ-प्रकाश,
जाग्रत हुई जन-मन आश,
तूफानों से टकराए तुम
हुए नहीं तुम तनिक हताश,
आर्य समाज किया स्थापित
जिससे हो जग को कल्याण।
दयानंद ऋषिराज महान्॥5॥

मुसाफिर खाना, सुल्तानपुर
(उत्तर प्रदेश)

★ ★ ★

गुणनिधान

आये थे दयानन्द

-आचार्य हरिसिंह त्यागी

उद्धार करने वेद का, आये थे दयानन्द ।
उपकार करने देश का, आये थे दयानन्द ।।

ऋषि ने अनाथों को, सदा सीने से लगाया।
विधवाओं के उत्थान में, जीवन है बिताया ।।
भव-भीतियाँ मिटाने को, आये थे दयानन्द. ।।1।।

जिज्ञासुओं को वेद का, रस-पान कराया।
पाषाण-पूजकों को सत्य-ज्ञान सिखाया।।
अँधियार मिटाने को ही आये थे दयानन्द ।।2।।

राष्ट्र की बिगड़ी दशा देखी जो ऋषि ने।
भारत की पराधीनता देखी जो ऋषि ने ।।
स्वाधीनता जगाने को आये थे दयानन्द ।।3।।

सत्यार्थ के प्रकाश को ऋषि ने प्रकट किया।
वैदिक 'व्यवहारभानु' को लिखकर अमिट किया।।
वेदादिभाष्य करने को आये थे दयानन्द ।।4।।

पूर्व आचार्य- गुरुकुल महाविद्यालय, ज्वालापुर

संस्कृति का संदेश

चलं वित्तं चलं चित्तं चले जीवित यौवने
चलाचलमिदं सर्वं कीर्तिर्यस्य स जीवति।।

धन चलायमान है, चित्त चलायमान है, जीवन और युवावस्था भी चलायमान है। इस चलाचली वाले संसार में जिसकी कीर्ति है, वही जीवित (स्थायी) है।

नमन शत-शत

दीपमाला का नायक ऋषि दयानन्द

-स्वामी समर्पणानन्द सरस्वती

यह फिर आज मंगल, यह फिर क्यों बधाई।
रणाङ्गण में भेरी यह किसने बजाई ।।
अमर मौत की खोज फिर क्यों उठ आई।
यह जीवों के मरघट में क्यों जान आई।।
तरंगें उठीं केतु सागर में कैसे।
हिलोरें दिलों में ये फिर आज कैसे ।।1।।

इस थाली में किसके तिलक की तैय्यारी,
ये रंग लाल कैसा, ये कैसे पुजारी
यह गर्मी है, पूजा में क्यों आज भारी,
दिलों में जगी ज्योति ये कैसे प्यारी।।
ये इनकी भला आरती क्यों समर में,
चकाचौंध चपला की क्यों है करो में।।2।।

अभी तो लखी है भला एक झांकी,
अभी देखना रंग कैसे हैं बाकी।
दया दृष्टि की, जिसकी है, कोर बांकी।
पुकारें सुनी उसने आक्रान्त मां की।
अभी लाल रंग में ये अम्बर रंगेगा।
ये केसरिया बाने का जौहर रचेगा।।3।।

ये आतंक ! ओह! कैसी भीषण ऊँचाई,
झपेटें प्रभंजन की ये कैसी आई।
हिमाचल है क्यों ऐसे घबराते भाई,
ये लोरी, ये थपकी सुलाने को आई।
गजब है ये लोरी! ये ढंग हैं निराले।
यहां कल्पना के भी पर होते ढीले ।।4।।

अ से ज्ञ तक

आश्रम शताब्दी की ओर बढ़ते कदम....

(वानप्रस्थ आश्रम का लेखा-जोखा)

-कार्यालय प्रस्तुति

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के मन्तव्यानुसार मनुष्यों को सांसारिक सुख, लौकिक अभ्युदय और भौतिक उन्नति के लिये प्रयास अवश्य करना चाहिये पर उन्हीं को अपने जीवन का एक - मात्र लक्ष्य नहीं मानना चाहिये । मानव जीवन का परम लक्ष्य मोक्ष है। पर मोक्ष की साधना न सुगम है न सभी के लिये सम्भव है परन्तु उसके लिये तैयारी अवश्य करनी चाहिये । इस लक्ष्य को ध्यान में रखकर महर्षि ने वैदिक आश्रम व्यवस्था पर बल दिया। उन्होंने कहा कि मनुष्य को 50-60 वर्ष की आयु होने पर गृहस्थ से विरत होकर वानप्रस्थी होकर तप का जीवन बिताते हुए धार्मिक तपश्चर्या, सत्संग योगाभ्यास और सुविचार से ज्ञान एवं पवित्रता प्राप्त कर 75 वर्ष की आयु होने पर संन्यास लेकर प्राणिमात्र के उपकार सत्यमार्ग, सत्यविद्या द्वारा द्वन्द्वों से रहित होकर ब्रह्म में अवस्थित हो जाना चाहिये।

महर्षि द्वारा प्रतिपादित उपर्युक्त व्यवस्था को कार्यरूप देने के उद्देश्य से आर्य जगत के मूर्धन्य विद्वान तपोनिष्ठ महात्मा नारायण स्वामीजी ने 15 मई 1926 ई. को इस आर्य वानप्रस्थ एवं संन्यास आश्रम की स्थापना का निश्चय किया। उनके सद् प्रयासों के फलस्वरूप 30 मार्च 1928 ई. रामनवमी के दिन आश्रम का भूमि प्रवेश यज्ञ कर निर्माण कार्य प्रारम्भ किया और 7 मार्च 1929 ई. तक 7 कुटियों का निर्माण हो चुकने पर उन्होंने इस आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम का विधि वत उद्घाटन किया। सर्वप्रथम 12 व्यक्तियों ने वानप्रस्थ एवं 8 व्यक्तियों ने संन्यास आश्रम की विधि वत् दीक्षा ली। विगत् 96 वर्षों में सात कुटियों से आरम्भ इस आश्रम में कुटियों की संख्या 407 हो गई है तथा वर्तमान में कुल 336 साधक-साधिकाएं सर्वविध सम्पन्न इस आश्रम में निवास कर रहे हैं। इस प्रकार बीजरूप में रोपित इस आश्रम ने उत्तरोत्तर विकास को प्राप्त होते-होते एक विशाल वट वृक्ष का रूप धारण कर लिया है। आज इस आश्रम की तीन शाखाएँ हैं। शाखा नं.-१, शाखा नं. २ तथा मध्य में मुख्य शाखा।

महात्मा नारायण स्वामी जी वर्ष 1928 से 1947 ई. तक आश्रम के प्रधान रहे। विकास की इस प्रक्रिया में महात्मा नारायण स्वामी के पश्चात् महात्मा हर प्रकाशजी का कृतित्व सबसे अधिक है। उन्होंने सन् 1945 में वानप्रस्थ की दीक्षा ग्रहण की और आर्य विरक्त आश्रम ज्वालापुर आ गये। शीघ्र ही वे महात्मा नारायण स्वामी जी के दाँए हाथ बन गये। लगभग 30 वर्षों तक वे तन मन व धन से आश्रम के सर्वतोमुखी विकास में तत्पर रहे। वे आश्रम में 5 वर्ष मन्त्री एवं 13 वर्ष प्रधान रहे। और आश्रम का प्रगति में अत्यधिक सहयोग दिया।

महात्मा हर प्रकाश जी के बाद जिन महानुभावों ने आश्रम के संचालन एवं प्रगति में विशेष

तत्परता दिखाई, उनमें महात्मा आर्य भिक्षु जी का नाम प्रमुख है। वे कई वर्षों तक आश्रम के प्रधान रहे और देश में विभिन्न स्थानों पर भ्रमण करते हुए आर्य सिद्धान्तों का प्रचार-प्रसार करते रहे। विगत दशकों में जिन महानुभावों ने आश्रम के प्रधान एवं मन्त्री के रूप में उसके उत्तरोत्तर विकास में बहुमूल्य योगदान दिया है उनमें से प्रमुख हैं- श्री मक्खन लाल नागपाल, श्री जगदीश चन्द्र जौहरी, माता पुष्पावती मोगा, स्वामी बलराम (निवृत्तानन्दजी) डा. कृष्ण देव, सर्वश्री कल्याण स्वरूप, श्री मंगलसेन, श्री महेन्द्र मुनि जी एवं अनेक महानुभावों ने इस आश्रम को संवारा एवं निखारा है।

सन् 2001 ई. एवं 2002 ई. में श्री सुभाष चन्द्र जसूजा (डा. आनन्द अभिलाषी) तथा श्री यशवंत मुनि जी मन्त्री ने इस आश्रम में प्रशासनिक भवन बनवाकर आश्रम को सुविधा सम्पन्न बनाया। और आश्रम की तीनों शाखाओं में पानी की बड़ी टंकियों को लगवाकर आश्रम साधकों की कुटियाओं में जल उपलब्ध करवाया। तत्पश्चात् आश्रम, प्रधान श्री यशपाल सचदेवाजी ने फिजियोथेरेपी सेण्टर बनवाकर आश्रम वासियों को अति आवश्यक चिकित्सा सेवा की पूर्ति में अपना अमूल्य सहयोग प्रदान किया। आश्रम में एलोपैथिक, आयुर्वेदिक होम्योपैथिक दन्त चिकित्सा की सुविधा भी उपलब्ध है। इसके अतिरिक्त गौशाला सेवक एवं अन्य कर्मचारियों के लिये भी सुन्दर सुविधा-सम्पन्न अनेक कुटियों का निर्माण कराया। आश्रम प्रधान डा. वेद- मुनि जी के सत्प्रयास से गौशाला न. एक तथा दो में विद्युत की अण्डर ग्राउन्ड केविल डाली गई व एक बड़ा जैनेरेटर भी लगवाया व मुख्य शाखा में एक बड़ा गेट कनखल साईड में बनवाया। आश्रम के चहुंमुखी विकास को आगे बढ़ाते हुए आश्रम प्रधान श्री दिनेशकुमार पाण्डे जी ने साधकों के व्यक्तिगत अनुरोध पर उनकी कुटियों में ए.सी. लगवाने की अनुमति देकर सुविधा प्रदान की। आश्रमवासी दानदाताओं के सहयोग से पंचवटी नामक पांच विशिष्ट आवधि गृहों का एवं कुल 17 अतिथिगृहों का निर्माण या जीर्णोद्धार करवाया। सीताकुमार भवन को नया प्रारूप देकर उसका नाम महात्मा नारायण स्वामी सभागार रखा गया । उसमें अनेक ध्यान एवं योग कक्षाओं का तथा विशेष उत्सवों पर सांस्कृतिक कार्यक्रम एवं भजन, सन्ध्या आदि का आयोजन कराया। शाखा न. एक व दो के बड़े गेट बनवाये। पुस्तकालय का विस्तार, विक्रय भण्डार का नवीनीकरण कराया। स्वस्ति-पन्था पत्रिका के सम्पादक डॉ. सुरेन्द्र शर्मा जी की परिकल्पना को साकार रूप देते हुए स्वाध्याय-साधना केन्द्र का नवीनीकरण कराया एवं ब्र. मनीषजी व माता शैलबाला जी ने, यज्ञ मन्त्र एवं संस्कृत का पठन-पाठन प्रारम्भ किया।

वर्तमान में आश्रम के सुयोग्य वैदिक विद्वान डा. रामकृष्ण शास्त्री आश्रम के प्रधान पद पर आसीन हैं व उनकी देखरेख में आश्रम निरन्तर प्रगति पथ पर अग्रसर है। शाखा नं. 2 में सीवरेज की समस्या को हल करने हेतु नई सीवर लाइन डाली गयी है। मुख्य शाखा में वैदिक पाठशाला में प्रातःकाल सन्ध्या, दैनिक यज्ञ एवं शुद्ध मन्त्रोच्चारण की कक्षा आश्रम की वरिष्ठ साधिका माता शैलबालाजी द्वारा एवं सायंकाल में संस्कृत व वैदिक साहित्य का पठन-पाठन डॉ. प्रेम प्रकाश जी द्वारा

अनवरत चल रहा है। ध्यान कक्ष का सौन्दर्यीकरण करवाकर ध्यान साधना योग की नियमित कक्षाएँ आश्रम के तपस्वी साधक श्री तेजस् मुनि जी द्वारा संचालित की जा रही हैं। वर्तमान में आश्रम के सात्विक दान से एक भव्य एवं विशाल सत्संग भवन (सभागार) का निर्माण हो चुका है तथा मुख्य शाखा में विद्युत् व्यवस्था की आवश्यकता को देखते हुए हैवी केवल तथा ट्रांसफारमर लगाने के कार्य की तैयारियां शुरु हो गयी हैं। नव निर्मित सत्संग भवन के निकट ही एक सुन्दर यज्ञशाला का निर्माण कार्य भी पूर्ण हो गया है।

इस प्रकार विगत 17 वर्षों में इस आर्य विरक्त (वानप्रस्थ एवं संन्यास) आश्रम ने अनेक कीर्तिमान स्थापित किये हैं। वर्तमान में यह आश्रम न केवल देश में वरन् सम्पूर्ण विश्व में एक अनूठे आश्रम के रूप में प्रतिष्ठित है। सन् 1928 में महात्मा नारायण स्वामी जी द्वारा पौध रूप में रोपित यह आश्रम उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ वट-वृक्ष के रूप में पुष्पित एवं पल्लवित होता जा रहा है एवं शीघ्र ही शताब्दी समारोह मनाने जा रहा है। यद्यपि काफी हद तक यह आश्रम, साधन-सम्पन्न एवं सर्वविध सुविधाओं से परिपूर्ण है तथापि अपने उद्देश्य की पूर्ति में अनवरत आगे बढ़ते हुए आने वाले वर्षों में साधक-साधिकाओं की गतिविधियों को अधिक से अधिक देशहित, समाज हित तथा वैदिक धर्म के प्रचार-प्रसार की और उन्मुख किया जा सकेगा ओर हमें विश्वास है कि आश्रम के प्रत्येक सदस्य के सहयोग से यह आश्रम निरन्तर प्रगति-पथ पर अग्रसर होता रहेगा।

-प्रस्तुति-श्रीमती शोभा छाबड़ा

संस्कृत साहित्य में धर्म का स्वरूप

1. यतोऽभ्युदय निःश्रेयस् सिद्धिः स धर्मः।

जिससे अभ्युदय (भौतिक उन्नति) और निःश्रेयस् (आध्यात्मिक उन्नति) की सिद्धि हो, उसे धर्म कहते हैं।

2. न धर्मात् परो लाभः।

धर्म से बड़ा लाभ नहीं।

3. एक एव चरेद् धर्मः, नास्ति धर्मे सहायकः।

अकेला ही धर्म का आचरण करें। धर्म में कोई साथी नहीं होता।

4. न धर्मः वेदपाठेन शक्यो भारत वेदितुम्।

केवल वेद पाठ से धर्म के स्वरूप को नहीं समझा जा सकता।

5. अविरोधात्तु यो धर्मः स धर्मः सत्य विक्रम।

जहाँ एक धर्म का दूसरे से विरोध न हो, वही धर्म है।

वैदिक वाङ्मय में 'माया' का विवेचन

-डॉ0 प्रेम प्रकाश

असतो मा सद्गमय, तमसो मा ज्योतिर्गमय, मृत्योर्माऽमृतं गमय।। (बृह0 उप0 1.3.28)

उपरोक्त मंत्र में ईश्वर से प्रार्थना की गयी है कि मुझे असत् से सत् की ओर ले चलो, अन्धकार से प्रकाश की ओर ले चलो, मृत्यु से अमृत की ओर ले चलो। असत्, सत्, तमस् और प्रकाश का यहां क्या तात्पर्य है। सत् और असत् की विभिन्न व्याख्यायें की गयी हैं। सत् तत्त्व से जीवात्मा और परमात्मा को माना जाता है। कूटस्थ, अपरिणामी सर्वात्मा ही सत् है, शेष सबको असत् कहा जाता है। असत् का तात्पर्य अस्तित्वहीन और मिथ्या लगाया जा सकता है, परन्तु इसे सत् से भिन्न, नाशवान, परिवर्तनशील, वाणी से ज्ञातव्य, विकाररूप और नाममात्र भी कहा जाता है। आचार्य शंकर ने जगत् के पारमार्थिक मिथ्यात्व को सिद्ध करने के लिए माया तत्त्व की कल्पना की है। यह उनके मुख्य वाक्यांश - **'ब्रह्म सत्यं जगत् मिथ्या'** की व्याख्या में आता है, क्योंकि उनका सिद्धान्त अद्वैतवादी है। जगत् का मिथ्यात्व भले ही विवादास्पद हो, परन्तु 'माया' शब्द से कथित जगत् और माया की विवेचना आवश्यक है।

'माया' शब्द के अर्थ प्राय: जादू, इन्द्रजाल, छल, कपट, मिथ्या, धोखा, जालसाजी, धूर्तता, चाल आदि किए जाते हैं। भारतीय वाङ्मय में 'माया' शब्द के अनेक अर्थ प्रयोग में देखे जाते हैं। सायणाचार्य ने प्रसंगानुसार इसके दो अर्थ निम्नवत् किये हैं-

(1) देवों से सम्बन्ध होने के कारण इसका अर्थ शक्ति या प्रज्ञा है।

(2) दु:सत्त्वों, असुरों से सम्बन्ध होने के कारण इसका अर्थ कपट या दु:प्रज्ञा है।

ऋ० 2.17.5 में 'माया' शब्द का प्रयोग आया है, जिसका अर्थ है- परमात्मा की प्रज्ञान व शक्ति। निघण्टु और निरुक्त में 'माया' का अर्थ प्रज्ञा-प्रज्ञान पाया जाता है।

'माया' शब्द 'मा' धातु से बना है, जिसका अर्थ है, बनाना या रचना करना, परन्तु मूलत: इस शब्द का अर्थ था-रूप उत्पन्न करने की क्षमता। वह सृजनात्मक शक्ति, जिसके द्वारा परमात्मा विश्व को गढ़ता है, योग माया कहलाती है। इसी सम्बन्ध में महाभारत का निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है-

माया हि एषा मया सृष्टा यन्मां पश्यसि नारद ।
सर्वभूत गुणै: युक्तं नैव त्वं ज्ञातुमर्हसि।। शान्तिपर्व 339,44

अर्थात् - (भगवान का कथन)- हे नारद ! जो तुम देखते हो, वह माया है, जिसे मैंनें उत्पन्न किया है। यह मत समझो कि मेरे द्वारा रचित संसार में जो गुण पाये जाते. हैं, वे मुझमें विद्यमान हैं।

माया के सम्बन्ध में आचार्य शंकर का कथन- आचार्य शंकर के अनुसार ब्रह्म के अतिरिक्त कोई सत्ता ही नहीं है, अत: जगत् का उससे विकृत होने का प्रश्न ही नहीं है, क्योंकि जगत् मिथ्या है । ब्रह्म में

अविद्या अथवा माया नाम की एक शक्ति है, जिससे यह जगत् आविर्भूत हुआ प्रतीत होता है। यह माया न तो सत्य स्वरूप है और न हि असत्य स्वरूप, इसके कारण ही इस जगत् की स्थिति है। जगत् की मिथ्या भ्रान्ति का एक मात्र कारण यह माया है। यह अवर्णनीय और अनिर्वचनीय है। यह उसी प्रकार होता है जैसे जादूगर जड़, चेतन को प्रकट कर देता है। अतएव माया की उपाधि से संसक्त ब्रह्म ही जगत् का कारण है।

इस माया से युक्त ब्रह्म को ईश्वर कहते हैं। ईश्वर की अध्यक्षता में शनैः-शनैः माया का विकास होता है, जिससे यह नाम रूपात्मक जगत् बनता है। इस माया से ही पंचमहाभूतों तथा चेतन प्राणियों के शरीरों की यथा समय उत्पत्ति होती है। इन सब पदार्थों में यह अभेद्य परब्रह्म विद्यमान है, परन्तु माया की उपाधि के कारण यह ब्रह्म अनेक जीवों के रूप में विभक्त हुआ प्रतीत होता है। अतएव जीवों में भेद परमार्थतः सत्य नहीं है। विभिन्न प्राणी अपनी इच्छानुसार भौतिक पदार्थों का भोग करते हैं, परन्तु न तो ये अन्तःकरण वृत्तियाँ सत्य हैं और न हि भौतिक पदार्थ, क्योंकि ये दोनों माया की उपाधि से ही होते हैं।

जगत् और जीव का ज्ञान भ्रमात्मक है, इसे आचार्य शंकर ने विवर्तवाद की संज्ञा दी है। विवर्तवाद का अर्थ है- अन्य में अन्य की प्रतीति होना, जैसे-रज्जु में सर्प का या सर्प में रज्जु का भ्रम होना। इसी प्रकार भ्रमात्मक जगत् के पीछे अविकृत ब्रह्म है।

अज्ञानी पुरुष माया से परे देख नहीं पाता, अतः वह अपने वास्तविक स्वरूप को जान नहीं पाता। वह मायाजन्य उपाधियों को ही अपना स्वरूप समझने लगता है। इस अज्ञान के कारण वह आत्मा जो स्वरूपतः चैतन्य, निष्क्रिय तथा अनन्त है, सीमित ज्ञान व शक्ति वाला होकर कर्ता और भोक्ता बन जाता है। पुनः वह जीव पाप-पुण्य कर्मों के अनुसार जन्म-जन्मान्तरों में उन योनियों में जाता है, जो उसे ईश्वर पूर्वकृत कर्मों के प्रतिफल के रूप में प्रदान करता है। संक्षेपतः मुख्य रूप से यह शांकर सिद्धान्त है।

अन्य ग्रन्थों के अनुसार माया का स्वरूप - गीता में स्थान-स्थान पर माया का विवरण प्राप्त होता है। गीता के अनुसार परमात्मा संसार को भ्रम में रखता है क्योंकि यह संसार और हमारी इन्द्रियों के विषयों को उत्पन्न करके इन्द्रियों को बहिर्मुख कर देता है। इन्द्रिय विषयों को प्राप्त करने की इच्छा हमें परमात्मा से दूर ले जाती है। संसार के चमक-दमक से प्राप्त होने वाले पुरस्कारों के हम दास बन जाते हैं, जो कष्टों से भरा हुआ है। इसी आशय का कठोपनिषद् का निम्न उद्धरण द्रष्टव्य है-

पराञ्चिखानि व्यतृणत् स्वयंभूः तस्मात् पराङ्‌ पश्यति नान्तरात्मन्।
कश्चित् धीरः प्रत्यग् आत्मानं ऐक्षत् आवृतचक्षुः अमृतत्वम् इच्छन्॥

परमात्मकृत माया के सम्बन्ध में अग्रिम उद्धरण-

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया ।
मामेव ते प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ये ॥ गीता 7.14

व्यक्त ईश्वर के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह अपने सत् और असत् को मिलाता है। उसमें ब्रह्म की

निर्गुणता और अस्तित्वमान होने का विकार दोनों है, जो निम्न उद्धरण से स्पष्ट होता है-

तपामि अहं अहं वर्षं निगृह्णामि उत्सृजामि च।

अमृतं चैव मृत्युश्च सत् असत् च अहं अर्जुन ॥ गीता 9.19

उपरोक्त से स्पष्ट है कि माया वह शक्ति है जो ईश्वर को परिवर्तनशील प्रकृति को उत्पन्न करने में समर्थ बनाती है।

इस अर्थ से ईश्वर और माया परस्पर आश्रित प्रतीत होते हैं। इस सम्बन्ध में उपनिषद् का निम्न उद्धरण-

मायां तु प्रकृति विद्यात् मायिनं तु महेश्वरम्।

तस्यावयव भूतैः तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ श्वेता0उप04.10

इस प्रकार उपरोक्त से भी जगत् का मिथ्यात्व और भ्रामकत्व सिद्ध नहीं होता ।
गीता में भगवान की इस शक्ति को माया कहा गया है, जो निम्न रूप से स्पष्ट है-

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्।

प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया।। (गीता 4/6)

गीता के अनुसार परमात्मा अपने अस्तित्व के दो तत्त्वों - प्रकृति और पुरुष यानी भौतिक तत्व और चेतना द्वारा संसार को उत्पन्न कर सकता है, अतः इन दोनों तत्त्वों को परमात्मा की उच्चतर और निम्नतर माया कहा जाता है। इसमें माया का अर्थ निम्नतर प्रकृति है, क्योंकि पुरुष तो वह चीज है, जिसे परमात्मा सृष्टि रचना हेतु प्रकृति के गर्भ में बोता है।

बृह0उप0 2.1.20 में जगत् की सार्थकता हेतु ब्रह्म को सत्यस्य सत्यम् का विशेषण प्रयोग किया गया है। जगत् को सत्य और इसके नियन्ता को सत्य का सत्य कहा गया है। परवर्ती चिन्तकों ने जगत् को मिथ्या कहा है, ताकि उनका अद्वैतवादी सिद्धान्त धराशायी न हो जाय। बृह0 उप0 में अनेक स्थलों पर जगत् को अनृत, तमसावृत और असत् कहा गया है, परन्तु इससे जगत् का अस्तित्व नष्ट नहीं होता, बल्कि उसका तात्पर्य यह है कि जगत् की भौतिक उपलब्धियाँ जीवात्मा को मुक्त नहीं होने देती हैं, अतः जीवात्मा जन्म और मृत्यु के बन्धन में पड़ा रहता है। जगत् के भोगों के क्षणभंगुर होने और उनके आत्मज्ञान में बाधक होने से जीवात्मा को भोगों से दूर रहने के अभिप्राय से जगत् को मिथ्या कहा गया है, वास्तव में जगत् न तो मिथ्या है, और न हि मायारूप और भ्रमात्मक है।

2/19 आर्य वानप्रस्थ आश्रम.
ज्वालापुर (हरिद्वार)

छात्र परिचर्चा

हमारे आदर्श-मर्यादा पुरुषोत्तम राम

आज समस्त भारत राममय हो रहा है। राम के बारे में मनीषियों की विभिन्न प्रकार की कल्पनायें हैं। निराकार ईश्वर के उपासकों के अनुसार -**रमन्ते योगिनो यस्मिन् सः रामः** अर्थात् जिसमें योगी लोग रमण करते हैं उसे राम कहते हैं। परन्तु अन्य विद्वान श्री राम में मर्यादा पुरुषोत्तम की भव्य कल्पना करते हैं। प्रत्येक रूप में श्री राम भारतीय संस्कृति के आदर्श हैं, आराध्य हैं और अनुकरणीय हैं। इस संदर्भ में हमने पतंजलि योगपीठ हरिद्वार के सम्बद्ध स्वामी दर्शनानन्द गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर में अध्ययन करने वाले ब्रह्मचारियों के हृदय को टटोलने का प्रयास किया है कि उन्होंने श्री राम की किस रूप में कल्पना की है।

संपादक

त्याग और मर्यादा की प्रतिमूर्ति श्री-राम

भगवान राम के गुण-लोकमर्यादा

अजय, कक्षा-10

प्रभु श्रीराम जी का जन्म त्रेता युग में हुआ था। सीता स्वयंवर में विश्वामित्र की आज्ञा से राम ने शिव धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई और सीता जी से विवाह किया। राजतिलक से पहले ही उन्हें उनके पिता ने चौदह वर्ष का वनवास दे दिया। प्रभु श्रीराम जी ने पिता की आज्ञा को बहुत ही विनम्रता पूर्वक स्वीकार करते हुए अपने पिता जी के चरण स्पर्श किये और सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ वनवास के लिए निकल पड़े। भगवान राम त्याग की मूर्ति हैं, क्योंकि वे पिता की आज्ञा को पूरा करने के लिए राजकुमार होते हुए भी 14 वर्ष तक वनवासी रहे। हमें भगवान राम के जीवन से त्याग व मर्यादा की प्रेरणा लेनी चाहिए।

★ ★ ★

चित्र नहीं, चरित्र का पूजन

असुर संहार

अर्जुन, कक्षा-10

ईक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न राजा दशरथ एवं माता कौशल्या के पुत्र सर्वगुण सम्पन्न एक ऐसा व्यक्तित्व जो शौर्य, धैर्य, पराक्रम तथा पावनता का स्वरुप है। भगवान श्रीराम जिनका अगले दिन प्रातःकाल राज्याभिषेक होने वाला था, परन्तु अपने पिता की एक आज्ञा पर वे वनवास चले गये और 14 वर्षों तक अयोध्या की तरफ मुड़कर नहीं देखा। ऐसा आदर्श एवं आज्ञापालन करने वाला व्यक्तित्व आज तक न हुआ है और न होगा। ऐसे प्रभु श्री राम के सम्बन्ध में जनता जनार्दन का मानना है कि राम वापिस आ गए परन्तु प्रभु श्रीराम हमारे आदर्श के रूप में दुनिया के हर व्यक्ति के चित्त में निवास करते हैं। हमें प्रभु राम के चित्र की नहीं अपितु उनके चरित्र की पूजा करनी चाहिए अर्थात् हमें आदर्श पुत्र, आदर्श पिता तथा आदर्श नागरिक बनने का सार्थक प्रयास करना चाहिए। जिस दिन

से भारत के प्रत्येक व्यक्तियों में श्रीराम जैसा व्यक्तित्व विकसित होने लगेगा, भारत में रामराज्य स्थापित हो जायेगा।

★ ★ ★

वैदिक चिंतन

गुरूकुलीय परम्परा के संवाहक- श्री राम

लकी, कक्षा -12

ईक्ष्वाकु वंशीय श्री राम पुरुषों में उत्तम पुरुषोत्तम हैं। पिता के एक वचन के अनुसार 14 वर्ष के लिए वनवास जाना एवं मर्यादा में रहकर समस्त सांसारिक कर्तव्यों का पालन करते हुए वनवास समाप्त करना, ये उनके मर्यादित एवं कर्तव्यनिष्ठ होने का एक सार्थक उदाहरण है। गुरुकुलीय परम्परा में रहकर समस्त वेद-वेदांगों-शास्त्रों-धनुर्विद्या एवं संस्कारों से सुसज्जित रघुकुल नन्दन प्रभु श्रीराम समाज के सामने प्रस्तुत हुए और श्रेष्ठ पुत्र धर्म का पालन किया। भाइयों के प्रति अतुलनीय प्रेम, गुरुओं के प्रति श्रद्धा, परिवार में विनम्रता आदि सद्‌गुण उनके संस्कारों का प्रदर्शन है।

प्रभु श्रीराम हम सबके एक ऐसे आदर्श व्यक्तित्व हैं जिनकी विमल भक्ति प्राप्त करने का एक मात्र साधन प्रेम-मार्ग है। ऐसे परम प्रभु का दर्शन, चिन्तन और मनन करना प्रत्येक मानव का परम लक्ष्य होना चाहिए।

★ ★ ★

त्यागमय जीवन का संदेश

वीरता की प्रतिमूर्ति

आदर्श, कक्षा-9

श्री राम का जन्म त्रेता युग में दुष्टों का संहार एवं संतों का उद्धार करने के लिए इस पृथ्वी लोक पर हुआ था। उनके जैसा मर्यादित एवं कर्त्तव्यनिष्ठ महापुरुष न इस धरा पर हुआ है और न कभी होगा। सत्पुरुषों जैसा आचरण उनकी साक्षात् प्रतिमा है। उन्होंने अपने ब्रहाचर्य आश्रम में सभी वेदों का अध्ययन सरलता से कर लिया था। और उस विद्या के द्वारा जनकल्याण किया। वह हमेशा धर्म का साथ देते थे। ऐसे ही हमें उनके जैसा आचरण तथा सन्मार्ग पर चलते हुए उदात्त भावना के साथ अपना जीवन व्यतीत करने का सार्थक प्रयास करना चाहिए। जिस प्रकार रावण को पराजित करने के बाद जब लक्ष्मण ने कहा कि भ्राता अब हम इसी स्वर्ण मयी लंका में निवास करेंगे। परन्तु भगवान राम ने त्याग भावना से लक्ष्मण को कहा कि -

अपि स्वर्णमयी लंका न मे लक्ष्मण रोचते । जननी जन्मभूमिश्च, स्वर्गादपि गरीयसी ॥

आदर्श नायक

धनुर्धर और कुशल योद्धा

प्रियांश, कक्षा-10

राजा राम एक आदर्श और मर्यादित पुरुष थे। मन वाणी या कर्म से उन्होंने किसी को कष्ट नहीं दिया। श्री राम परम शक्तिशाली योद्धा और कुशल धनुर्धर थे। इतना सब कुछ होते हुए भी वे एक निरंहकारी राजा थे। अहंकार उन्हें छू भी नही सका वह सबके प्रति विनम्र, करुणामय और उदार भाव रखते थे। अगर राम जी के सुपुत्र होने पर प्रकाश डाला जायें तो उनका गौरवमयी इतिहास उनके एक सुपुत्र होने को प्रमाणित करता है। पिता की इच्छा पर बिना कुछ विचार किये वनवास ग्रहण किया। इस आज्ञाकारिता के लिए आज तक श्रीराम पूजनीय और वन्दनीय हैं। अगर हमें भारत में रामराज्य स्थापित करना है तो हमें उनके पदचिन्हों पर चलना होगा।

आदर्श उदाहरण

राम वनगमन का विशेष प्रयोजन

आदित्य कुमार, कक्षा-8

प्रभु श्री राम जी का जन्म त्रेता युग में हुआ था। श्री राम जी के पिता जी का नाम दशरथ था। राजा दशरथ की तीन पत्नी कौशल्या, सुमित्रा, कैकेई थीं। श्री राम चन्द्र जी के तीन भाई थे। उनका नाम लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न था। प्रभु श्री राम चन्द्र जी का जन्म एक विशेष कार्य के लिए हुआ था। प्रभु श्री राम जी मर्यादा पुरुषोत्तम थे। चौदह वर्ष के वनवास में कठिनाइयों का सामना करते हुए रावण का अन्त किया जिसे हम दशहरा के रूप में मनाते हैं। राम रावण युद्ध में लक्ष्मण जी को बाण लगा और वे मूर्छित हो गए, तब हनुमान जी जड़ी बूटी का पर्वत ही ले आए थे । रावण का वध करने के बाद लक्ष्मण जी ने श्री रामचन्द्र जी से कहा कि भ्राता जी, अब तो हम इसी स्वर्णमयी लंका में रहेंगे तो श्री राम जी ने लक्ष्मण को समझाते हुए कहा कि जननी और जन्म भूमि स्वर्ग से भी महान होते हैं।

प्रशंसनीय एवं अनुकरणीय

वचन पालन की प्रतिज्ञा

शेखर, कक्षा-9

राम हमारे आदर्श हैं, और हमें अपने आदर्शों, महापुरुषों जैसा ही अपना जीवन बनाना चाहिए। जिस प्रकार प्रभु श्रीराम अपने पिता की एक आज्ञा पर चौदह वर्ष के लिए वन में रहने के लिए चले गये। उसी प्रकार हमें भी हमारे माता-पिता, गुरुजन आदि जो कहते हैं वह एक बार में ही श्रद्धापूर्वक स्वीकार कर लेना चाहिए। अपना दिया वचन कभी नहीं तोड़ना चाहिए क्योंकि कहा गया है -

रघुकुल रीत सदा चली आई।
प्राण जाए पर वचन न जाई ॥

अर्थात हमारे प्राण भले ही चले जायें परन्तु हमारा दिया गया वचन कभी नहीं जाना चाहिए। यदि हमने किसी को वचन दिया है तो वह वचन हमें अवश्य पूरा करना चाहिए। भले ही उस वचन को पूर्ण करने में हमारा पूर्ण जीवन ही क्यों न चला जाए।

स्वर्ग स्थित (सुख विशेष) पुरुषों के लक्षण

स्वर्गस्थितानामिह जीव लोके चत्वारि चिह्नानि वसन्ति देहे।
दान प्रसंगो मधुरा च वाणी देवार्चनं ब्राह्मण तर्पणं च॥

इस संसार में स्वर्गीय आनन्द (सुख विशेष) प्राप्त करने वालों में चार चिह्न दृष्टिगत होते हैं-

1. दान देने का स्वभाव
2. वाणी में मधुरता
3. ईश्वर का स्मरण तथा
4. विद्वानों की सेवा-सुश्रुषा ।

(चाणक्य नीति)

दिव्यता का संदेश

पुराणोक्त देवताओं की अवधारणा

- डॉ. ज्वलन्त कुमार शास्त्री

उत्तरकालीन याज्ञिकों की देवविषयक विचारणा का आधार पौराणिक देवतावाद की विचार धारा है। बहुलांश में इन दोनों की मान्यताएँ एक-दूसरे से प्रभावित हैं और एक दूसरे पर आश्रित भी हैं। बेङ्कटमाधव ने यह स्पष्ट घोषणा की है कि ''इतिहास और पुराणों ने जो देवता-स्वरूप प्रदर्शित किये हैं वे अग्नि, वायु आदि देव चेतनरूप में हैं। ऐतिहासिकों तथा पौराणिकों से इतर आचायों ने ही अचेतन देव स्वीकार किये हैं।'' वेदों में जहाँ स्पष्ट ही एक ही परतत्त्व के कार्य भेद से भिन्न-भिन्न संज्ञाएँ प्रचलित होने की बात कही गई है। अर्थात् एक ही सत् तत्त्व को विप्र लोग अनेक नामों से प्रकाश करते हैं- इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, दिव्य, सुपर्ण, गुरुत्मान्, यम, मातरिश्वा आदि।। परन्तु पुराणों में इन सब देवों के नाम ही भिन्न नहीं होते अपितु सबके रूप और कार्यकलाप भी पर्याप्त भिन्न हो जाते हैं। ब्रह्मा चतुर्मुख, शंकर पञ्चमुख, विष्णु चतुर्भुज तथा क्षीरशायी, कार्तिकेय षण्मुख तथा गणेशजी गजानन बन गये हैं। स्वामी विवेकानन्द जी का कहना है कि ''आधुनिक हिन्दू धर्म अधिकांशतः एक पौराणिक धर्म है जिसका उद्गम बौद्ध काल के पश्चात् हुआ है'' (भारतीय नारी, पृ० 62)। **''वैदिक युग में प्रतिमा का अस्तित्व नहीं था, उस समय लोगों की यह धारणा थी कि ईश्वर सर्वत्र विराजमान है।** किन्तु बुद्ध के प्रचार के कारण हम जगत्-स्रष्टा एवं अपने सखा ईश्वर को खो बैठे और उसकी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिमापूजन की उत्पत्ति हुई (देववाणी, पृ० 65)''। उन्होंने अन्यत्र भी कहा ''पहले बौद्ध चैत्य, फिर स्तूप, और तत्पश्चात् बुद्ध का मन्दिर निर्मित हुआ। उसके साथ ही हिन्दू-देवताओं के मन्दिर खड़े हुए (संचयन, पृ० 328)''। अद्यतन हिन्दूधर्म का सर्वप्रसिद्ध धार्मिक ग्रन्थ गोस्वामी तुलसीदास रचित 'श्रीरामचरितमानस' है, जिसकी मान्यताएँ घर-घर में व्याप्त हैं। हिन्दी साहित्य के सुधी समालोचक प्रो0 आचार्य राममूर्ति त्रिपाठी (पूर्व प्रोफेसर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, विक्रम विश्वविद्यालय उज्जैन) ने प्रतिपादित किया है कि तुलसीदास के 'मानस' में वर्णित आख्यानों-उपाख्यानों में जिन देवताओं या पात्रों की चर्चा है उन पर पूरा-पूरा पुराणों का प्रभाव है।'' प्रो० त्रिपाठी के शब्द इस प्रकार हैं- ''पुराण उपाख्यानों के कारण ही पुराण कहे जाते हैं और तुलसी ने अपने साहित्य में जो उपाख्यान दिये हैं और उनमें जिन देवताओं या पात्रों की चर्चा की है, वे नाम से वैदिक होते हुए भी अर्थ से पौराणिक ही हैं।'' प्रो० त्रिपाठी तथ्यपूर्वक विश्लेषण करते हैं-''गोस्वामी जी ने पौराणिक रूपों का उपयोग किया, वैदिक रूपों

का नहीं।

'मानस' में देवताओं का अर्थात स्वर्ग-भोगी देवताओं का प्रशस्त रूप नहीं मिलता। या तो वे इन्द्रादि देवता झरोकों पर बैठे हुए हैं और विषय बयार को आते देख उसे खोल देते हैं। अथवा कभी-कभी रामचरित पर मुग्ध होकर रण-वन-नगर में या तो दुन्दुभि बजा देते हैं अथवा फूल बरसा देते हैं लगता है, वे स्वर्ग में गले में दुन्दुभि बाँधे बैठे हैं और झोली में फूल लिये। इस प्रकार अनेक प्रमाण से इस बात की पुष्टि की जा सकती है कि गोस्वामी जी ने वैदिक तत्त्वों की उपेक्षा की है और पौराणिक कल्पनाओं की अपेक्षा। यजुर्वेद के निम्नलिखित मन्त्र- **''आयं गौः पृश्निरक्रमीदसदन् मातरं पुरः। पितरं च प्रयन्त्स्वः''** (3/6) के साक्ष्य पर कहा जा सकता है कि पृथिवी सूर्य की परिक्रमा करती है जब कि पुराणों में पृथिवी को स्थिर और सूर्य को गतिशील कहा गया है। वेदों की गौः (गतिशील पृथिवी) पुराणों में आकर पृथिवी गाय बन गई और अधर्म से पीड़ित होने पर भगवान् के पास जाने लगी। गोसाई जी ने वैदिक विज्ञान की उपेक्षा की और पौराणिक प्रभाव ही ग्रहण किया। फलतः आज अनेक बातें वैज्ञानिक आलोक में अविश्वसनीय हो गई हैं।

स्वामी दयानन्द सरस्वती ने वेदों का गम्भीर अनुशीलन करके वैदिक देवताओं की वास्तविकता से अपने प्रमुख ग्रन्थ 'ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका' में हमें परिचय कराया तथा वेद विरुद्ध पौराणिक देवों और आख्यानों-उपाख्यानों के मिथ्यार्थ को भी प्रकाशित किया।

चार वेद-चार संदेश

1. **ऋग्वेद - रयि जागृवांसो अनुग्मन् ।**
   जागरूक जन ऐश्वर्य पाते हैं।
2. **यजुर्वेद - हिण्यमयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम्**
   स्वर्णमय पात्र से सत्य का मुख ढका हुआ है।
3. **सामवेद - ऋतस्य जिह्वा पवते मधु प्रियम्।**
   सत्य की जिह्वा से अति मोहक मधुरस करता है।
4. **अथर्ववेद - माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।**
   मेरी माता भूमि है और मैं मातृ भूमि का पुत्र हूँ।

नर से नारायण

स्वतंत्र भारत की संकल्पना के प्रतीकः महात्मा नारायण स्वामी

- डॉ. अमित कुमार चौहान
वैज्ञानिक, पंतजलि अनुसंधान संस्थान, हरिद्वार

आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने अपने कालजयी ग्रन्थ 'सत्यार्थ प्रकाश' के अष्टम समुल्लास में लिखा कि "कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशीय राज्य होता है, वह सर्वोपरि उत्तम होता है। अथवा मत-मतान्तर के रहित अपने और पराये का पक्षपातशून्य, प्रजा पर माता-पिता के समान कृपा, न्याय और दया के साथ विदेशियों का राज्य भी पूर्ण सुखदायक नहीं।" स्वामी जी का यह लेख 1857 ई. के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम को पुनः जीवत करने का बीज था। उक्त भाव को आत्मसात करके आर्य समाज की कोख से असंख्य स्वतन्त्रता सैनानियों यथा स्वामी श्रद्धानन्द, स्वामी रामानन्द, स्वामी भवानीदयाल, महात्मा आनन्द स्वामी, स्वामी सोमदेव, श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला लाजपत राय, भाई परमानन्द, पं. रामप्रसाद बिस्मिल, ठाकुर रोशन सिंह, सरदार भगत सिंह आदि ने जन्म लिया। ऐसे ही एक संन्यासी थे-महात्मा नारायण स्वामी।

महात्मा नारायण स्वामी का जन्म अलीगढ़ में हुआ था। आपके पूर्वज शृंगारपुर जिला जौनपुर के निवासी थे। स्वामी जी का पूर्वाश्रम नाम मुंशी नारायण प्रसाद था। मुरादाबाद में आर्य समाज के सम्पर्क में नारायण प्रसाद जी के मानसिक धरातल पर प्रसुप्त वैचारिक उथल-पुथल प्रारम्भ हो गई। स्वाध्यायशील युवक के मनन से धार्मिक व सांस्कृतिक चिन्तन के साथ-साथ राष्ट्रीय भावना उतरने लगीं। स्वाध्याय के धनीभूतीकरण से राष्ट्रधर्म का भावातिरेक परवान बढ़ने लगा।

कर्मयोगी नारायण स्वामी जी ने महर्षि दयानन्द को स्वतन्त्र भारत की संकल्पना को साकार करने के उद्देश्य से क्रान्ति के मुखर पुरोधा राजा महेन्द्रप्रताप से भेंट कर अपना मन्तव्य प्रकट किया। युवा राजा ने कहा "आप प्रज्ञा पुरूष है महर्षि के आविर्भाव से राष्ट्र को अतीत का स्वर्णिम इतिहास मिला है। उनके कारण स्वाधीनता का अध्याय देश में प्रारम्भ हुआ है, मेरे मानस में उनका योगदान भली-भाँति बैठा है" और उन्हें सैकड़ों एकड़ भूमि राष्ट्र निर्माण के हेतु प्रदान कर दी। जहाँ स्वामी जी ने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य अनुशासन, वैदिक चिन्तन और राष्ट्र स्वाभिमान में ओत-प्रोत अनेक स्वतन्त्रता सेनानियों के निर्माण के लिए गुरुकुल खोल दिया।

राष्ट्र व समाज को स्वस्थ देशभक्त बनाने के लिए न केवल पुरुषों प्रत्युत नारी चेतना व उनको शिक्षा भी आवश्यक है। इसी विचार को दृष्टिगत रखते हुए उन्होंने मैकाले को राष्ट्रभक्ति शून्य शिक्षा पद्धति से भावी माताओं को दूर रखने के लिए द्रोणस्थली देहरादून में कन्या गुरुकुल की स्थापना की। तदुपरान्त स्वामी जी हिमालय की पथरीली घाटियों में फैली स्वतन्त्रता में बाधक अशिक्षा, गरीबी,

अन्धविश्वास सामाजिक कुरीतियों और वहाँ के मानसिक अवसाद की धुन्ध का निराकरण करने का बीड़ा उठाया। रामगढ़ कुमाऊँ में जिस घिनौनी व नारियों पर अत्याचार की कुप्रथा जिसमें कन्याओं का विवाह न करवाकर, उनकी सरेआम बिक्री की जाती थी। स्वामी जी के प्रयासों से उसका अन्त हुआ और सभी अपनी कन्याओं को शिक्षित व विवाह संस्कार से सम्मानित करने लगे। इसी प्रकार गढ़वाल मण्डल में शिल्पकारों के साथ निरन्तर हो रहे सामाजिक अत्याचार का भेदभाव का अन्त करने के लिए जनमानस में वैदिक चेतना भरनी प्रारम्भ की। जिससे शिल्पकारों को ढोली-पालकी समस्या का अन्त हुआ। ये शिल्पकार आज तक अपने नाम के साथ 'आर्य' लगाते हैं और हिन्दू समाज की मुख्य धारा में सम्मिलित हैं। तत्कालीन आर्य नाम्नी अनेक शिल्पकारों ने स्वतन्त्रता आन्दोलन में भाग लिया।

हैदराबाद की तत्कालीन रियासत में 89% जनता हिन्दू 10% मुस्लिम और 1% ईसाई थी। लेकिन वहाँ का शासन एक मतान्ध मुस्लिम था। उसने पूरी शक्ति से हिन्दुओं के मन्दिरों में आरती-पूजा, कार्यक्रमों, उत्सवों व कथाओं आदि पर कड़े प्रतिबन्ध लगाकर धर्मान्तरण कराने का हर सम्भव प्रयास कर रखा था। हिन्दुओं में सामाजिक व धार्मिक चेतना का पुरोधा होने के कारण हैदराबाद रियासत आर्य समाज पर अत्यधिक कुपित रहती थी। यहाँ तक कि यज्ञकुण्ड रखना भी अपराध घोषित कर दिया था।

निजामशाही के इन आसुरी प्रतिबन्धों मानवीय अत्याचारों के अंहिसक प्रतिरोध के लिए महात्मा नारायण स्वामी 31 जनवरी 1939 को निजाम को ललकारते हुए हैदराबाद पहुँच गए। देश के कोने-कोने से लगभग 2000 युवकों ने निजामशाही से लोहा लेने के लिए हैदराबाद में प्रवेश किया। उन सभी को जेल में ठूंस दिया गया और निजाम ने उन पर अत्यन्त राक्षसी अत्याचार करके दमनचक्र चलाया। अनेक सत्याग्रही भयानक अमानवीय यातनाओं के कारण बलिदान हो गए। लेकिन लौहपुरुष संन्यासी के साहस, धैर्य और कुशल नेतृत्व के कारण निजाम को झुकना पड़ा और 17 जुलाई 1939 को स्वामी जी की सभी माँगो को मानते हुए सत्याग्रह समापन की याचना की। आपने कारागार में **'एकादशोपनिषद्'** का लेखन करके अपनी मानसिक दृढ़ता का परिचय दिया।

1944 ई. में सिन्ध को मुस्लिम लीग सरकार ने सत्यार्थ प्रकाश पर पूर्ण प्रतिबन्ध लगा दिया। उससे सभी वार्ताएँ विफल होने पर स्वामी जी ने सिन्ध सरकार के विरुद्ध 14 जनवरी 1947 को सत्याग्रह का बिगुल फूंका। स्वामी जी की हुँकार मात्र से सिन्ध सरकार डर गई और प्रतिबन्ध को 20 जनवरी 1947 को ही वापस ले लिया।

इस समय तक स्वामी जी की आयु 82 वर्ष हो चुकी थी, शरीर जराजीर्ण हो चुका था। 15 अक्टूबर 1947 ई. को स्वामी जी शरीर छोड़ नवयात्रा को चले गए। स्वामी जी का जीवन भले ही धार्मिक, सांस्कृतिक और सामाजिक चेतना जागरण से आवृत रहा हो। लेकिन इस प्रकार संत तुलसीदास आदि ने अपने काव्यों और गीतों के बोलों में मुगलिया सल्तनत को जुए में उतार फेंकने की प्रेरणा समाहित कर दी थी। उसी प्रकार महात्मा नारायण स्वामी ने अपने सामाजिक कार्यों द्वारा देश समाज

में राष्ट्रवाद के ऐसे बोज बोए कि आमजन स्वाधीनता में सहर्ष सम्मिलित हो गए। स्वतन्त्रता के उपरान्त जब निजाम ने भारतीय संघ में सम्मिलित होने में आनाकानी कि तो तत्कालीन गृहमंत्री सरदार पटेल जी ने सैनिक कार्यवाही की। सरदार पटेल ने कहा कि भारतीय फौज को हैदराबाद में जो सफलता मिली है उसका श्रेय समाज को भी जाता है क्योंकि हैदराबाद में जन चेतना का कार्य आर्यसमाज ने ही किया है। सरदार वल्लभभाई पटेल को यह उक्ति प्रकारान्तर से महात्मा नारायण स्वामी जी के राष्ट्र के प्रति किए गए कार्यों को श्रद्धाजंलि ही है।

-वैज्ञानिक पतंजलि अनुसंधान संस्थान, हरिद्वार

महर्षि दयानन्द की अन्तर्दृष्टि

पंडित ठाकुर प्रसाद के हृदय में स्वामी जी की योग मुद्रा देखने की उत्कट अभिलाषा थी। स्वामी जी के सेवकों से पूछ कर वे उस कुटिया के द्वार पर जा खड़े हुए जिसके भीतर स्वामी ध्यानावस्थित थे। ठाकुर प्रसाद जी बहुत देर तक महाराज के दर्शन करते रहे। उन्होंने देखा कि माहराज का आसन धीरे-धीरे भूमि से उठकर अधर में स्थित हो गया है। उस समय उनके मुख मंडल की छवि अद्भुत थी। उस पर प्रकाश मय चक्र बना हुआ था।

एक दिन पं0 सुन्दर लाल जी अपने मित्रों सहित स्वामी जी के दर्शनार्थ आए। उस समय स्वामी जी ध्यानावस्थित थे। अतः वे सब चुपचाप बैठे रहे। कोई आध घंटे पश्चात् स्वामी जी हँसते हुए बाहर आए। पंडित जी ने पूछा-'' आप किस बात पर हँस रहे हैं? स्वामी जी ने कहा- एक ब्राह्मण मेरे पास आने वाला है। तब एक ब्राह्मण मिष्ठान्न लिए पहुँचा। उसने स्वामी जी ने 'नमो नारायण' कह कर मिठाई भेंट की तब स्वामी जी से कहा ''लो थोड़ी से मिठाई तुम भी खाओ।'' परन्तु उसने न ली1 तब महाराज ने डाँट कर कहा- ''लेते क्यों नहीं हो?'' वह काँप तो गया किंतु वह मिठाई लेने से झिझकता रहा। उस समय स्वामी जी ने कहा ''यह मनुष्य हमारे लिए विष मिश्रित मिष्ठान्न लाया है। तब लोगों ने पुलिस को बुलाने के लिए कहा परन्तु स्वामी जी ने दयावश उसे छोड़ दिया और उसे शिक्षा दी कि भविष्य में ऐसा न करे। यह थी महर्षि दयानन्द की अन्तर्दृष्टि।

यात्रा वृत्तान्त

मेरी रोजड़ यात्रा

- डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा

आर्य समाज के लगभग तीन तीर्थस्थल कहे जा सकते हैं टंकारा, अजमेर और रोजड़। रोजड़ गुजरात प्रान्त के जिला साबरकांठा में स्थित है। इसका पता है- वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़, पत्रालय-सागपुर, साबर कांठा, गुजरात (3833071)

इसे स्वामी सत्यपतिजी की साधनास्थली कहा जा सकता है। यहाँ समय-समय पर अनेक आर्य विद्वान तथा महान संन्यासी पधारते रहते हैं तथा यहाँ आने वाले साधक-साधिका वृन्द साधनापथ अपना कर अपने जीवन को सफल बनाते हैं। मुझे पहली बार, दिसंबर 2023 को रोजड़ यात्रा करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ) जब मैं अपने पारिवारिक जनों के साथ अहमदाबाद रेलवे स्टेशन से रोजड शहर में पहुँचा तो एक चौराहें में एक बोर्ड पर मेरी नजर पड़ी जिस पर बड़े अक्षरों पर लिखा हुआ था, **''महर्षि दयानन्द चौक''** यह पढ़कर मुझे सुखद आनन्द की अनुभूति हुई। जब मैंने आश्रम में पहुँच कर चारों और निगाह डाली तो वहाँ फैली हुई हरीतिमा, प्राकृतिक सौन्दर्य और स्वच्छता को देखकर अत्यधिक प्रभावित हुआ। वहाँ का भौतिक सौंदर्य मुझे आध्यात्मिक सौदर्य की ओर उन्मुख करता हुआ सा प्रतीत हो रहा था।

आर्ष गुरुकुल की परिकल्पना - आश्रम में पहुँचने से पहले मैंने कल्पना भी नहीं की थी कि वहां गुरुकुल भी होगा। नाम के अनुरूप मैं तो यही सोच रहा था कि वहाँ केवल वानप्रस्थी ही रहते होंगे लेकिन तब मेरे आश्चर्य का ठिकाना ना रहा जब मैंने वानप्रस्थियों की अपेक्षा गुरुकुलीय ब्रह्मचारियों को अधिक संख्या में देखा। इस आश्रम के संस्थापक स्वामी सत्यपति जी ने एक ऐसे आर्ष गुरुकुल की परिकल्पना की थी जहाँ ब्रह्मचारी अष्टाध्यायी, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका, विदुरनीति, वेद उपनिषद, दर्शन आदि का अध्ययन करके आध्यात्मिकता के चरम शिखर पर पहुंच सके। **मैंने अनुभव किया कि छोटे बड़े सभी गुरुकुलीय ब्रह्मचारी श्वेत कटि वस्त्रों तथा लंबी शिखा में अत्यंत आकर्षक एवं भव्य प्रतीत हो रहे थे।** समय से पहले ही उन्होंने गंभीरता और अनुशासन प्रियता को अपना लिया था। कुछ वर्ष पूर्व वहाँ आर्ष कन्या गुरूकुल की स्थापना की गई है। मैंने दर्शन योग महाविद्यालय के भी दर्शन किए। वहां मुझे आर्य समाज के महान नेता स्वामी विवेकानंद जी परिव्राजक से मिलने का भी सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं उनके सहज स्नेह और विद्वत्ता से अत्यधिक प्रभावित हुआ। उन्हीं के मार्गदर्शन में ब्रह्मचारी दर्शन शास्त्र का अध्ययन करते हैं। मेरे अनुरोध पर श्रद्धेय स्वामी जी ने 'स्वस्ति पंथा' पत्रिका के महर्षि दयानन्द द्विशताब्दी जयन्ती विशेषांक (स्मारिका) के लिये अपना शुभकामना संदेश दिया जिसके लिये मैं हृदय से उनका आभारी हूँ। इसी दर्शन योग महाविद्यालय में मैंने कुछ दंडधारी ब्रह्मचारियों को सायंकाल के समय परिभ्रमण करते हुये देखा। उनकी आकृतियों पर दर्शन

विषय की गम्भीरता तथा अन्तर्मुखी चिन्तन एवं आध्यात्मिकता स्वत: ही स्पष्ट तौर पर परिलक्षित हो रही थी। दंड धारण करने का कारण पूछने पर उन्होंने बताया कि दीक्षित होते समय यहाँ दंड धारण करने का प्रावधान है।

यहीं आर्यवन में मैंने एक विशाल गौशाला देखी, जिसमें अनेक स्वस्थ, लाल रंग की नीलगीर गायें इसमें थी। इन्हीं के माध्यम से वानप्रस्थ साधक आश्रम तथा दर्शन योग महाविद्यालय की दुग्ध की आवश्यकता की पूर्ति होती है। मुझे यहाँ आकर जहाँ दर्शन योग महाविद्यालय के संचालक श्रद्धेय स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक के दर्शन करके अत्यधिक प्रसन्नता तो हुई पर इस बात की पीड़ा भी रही कि मैं वानप्रस्थ साधक आश्रम के संचालक श्रद्धेय सत्यजीत जी के दर्शन न कर सका क्योंकि वे एक दिन पहले आवश्यक कार्यवश अजमेर चले गये थे। मैं उनके प्रति आभार प्रकट करता हूँ कि उन्हीं की अनुकम्पा से मुझे और मेरे साथियों को आश्रम में रहने का शुभावसर प्राप्त हुआ।

यज्ञ-पद्धति- प्रातःकाल दैनिक कार्यों से निवृत्त होकर हम वानप्रस्थ साधक आश्रम की यज्ञशाला में पहुँचे। हमारे पहुँचने से पहले सभी छोटे बड़े ब्रह्मचारी वहां पहुंच चुके थे। वे एकदम मौन एवं अनुशासित ढंग से बैठे थे। यह मैं पहले ही स्पष्ट कर दूँ कि यज्ञशाला तृतीय तल (तिमंजिले) पर स्थित है। वहाँ पहुँचने के लिये भले ही लिफ्ट की व्यवस्था है परन्तु लिफ्ट में खराबी होने के कारण सभी यज्ञ प्रेमी सीढ़ियों से ही ऊपर जा रहे थे। उस भवन से बाहर बड़े-मोटे अक्षरों में लिखा हुआ था- **'अग्निहोत्र प्रशिक्षण केन्द्र'।** मुझे यह लिखते हुये प्रसन्नता होती है कि यज्ञशाला के सभी कार्यक्रम यू0 ट्युब से लाइव टेलीकास्ट होते हैं जिन्हें प्राय: अनेक लोग देखते और सुनते हैं। यज्ञवेदी और व्यासपीठ के सामने कैमरा फिट रहता है। घड़ी में देखकर ठीक प्रात: होते सात बजे मंचासीन ब्रह्मा (ऋत्विक्) के मुख से 'ओम्' की ध्वनि को प्रकट करते हैं और कैमरे की आँख खुल जाती है। ध्वनि और दृश्य का सुन्दर समन्वय। यहाँ मैं इस बात का विशेष उल्लेख करना चाहूँगा कि प्राय: अन्य आर्य समाजों में विशेष हवन में ही प्रारम्भ में संकल्प पाठ किया जाता है और वह भी केवल ऋत्विग् के मुख से, परन्तु यहाँ प्रतिदिन यज्ञ में सभी सम्मिलित व्यक्तियों के द्वारा सम्मिलित स्वर में संकल्प पाठ (अथ ब्रह्मणो द्वितीय प्रहरार्धे...) किया जाता है। यह संकल्प पाठ लकड़ी के श्यामपट्ट (ब्लैक बोर्ड) पर बड़े अक्षरों में अंकित होता है। ब्रह्मचारियों को तो यह रटा हुआ रहता है परन्तु नवागत यज्ञप्रेमी ब्लैकबोर्ड पर देखकर सम्मिलित स्वर में एक साथ पढ़ते हैं। मेरी दृष्टि में इसका कारण यह हो सकता है कि अन्य स्थानों पर ब्रह्मा, आचार्य या ऋत्विग् कहते हैं कि **'मया देवयज्ञः क्रियते,** अर्थात् मेरे द्वारा हवन किया जा रहा है परन्तु यहाँ पर कहा जाता है **'अस्माभिः लोक कल्याणार्थं देव यज्ञः क्रियते'** अर्थात् हमारे द्वारा लोक कल्याण के लिये यज्ञ (हवन) किया जा रहा है अतः इस वाक्य में व्यापक हित की भावना दृष्टिगत होती है।

प्रातः कालीन कार्यक्रम केवल 1 घंटे का होता है अतः इसमें ब्रह्म यज्ञ (संध्या) नहीं होता

केवल देव यज्ञ (हवन) होता है। भजन भी नहीं होते। इनके बदले ऋग्वेद और यजुर्वेद का पाठ होता है तथा एक प्रवचन भी होता है। मुझे यह देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि वहाँ अलमारियों में अनेक ऋग्वेद और यजुर्वेद रखे होते हैं। सभी ब्रह्मचारी तथा अन्य यज्ञप्रेमी वेद पाठ से पूर्व ही दोनों वेदों को अपने पास ले आते हैं और फिर ब्रह्मा या आचार्य आदेश देते हैं कि आज कौन से वेद से कौन सा मंडल (अध्याय) कौन सा मंत्र पढ़ा जाएगा और वह कौन से पृष्ठ पर होगा। यह घोषणा पहले संस्कृत में होती है और फिर हिंदी में। वेद पाठ के बाद सभी पुस्तकें यथास्थान रख दी जाती हैं। उसके बाद किसी आचार्य या विद्वान का प्रवचन होता है। यह मेरे लिए प्रसन्नता की बात है कि प्रवचन देने का सौभाग्य एक दिन मुझे भी मिला। इसके लिए श्रद्धेय सत्यप्रिय जी तथा आश्रमवासियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ।

मैंने यहाँ एक अच्छी परम्परा देखी कि यज्ञ में सम्मिलित होने वाले सभी सदस्य मुख्य वक्ता (आचार्य या विद्वान) को नमन करते हुए मंच के पास से गुजरते हैं तथा ब्रह्मचारी तो अपने गुरुजनों (संन्यासीगण) को प्रणाम करना भी नहीं भूलते हैं। वहाँ वेदवाणी और प्रवचन के बाद फिर मौन सन्नाटा छा जाता है।

अनुकरणीय बातें- इस आश्रम से बहुत कुछ सीख सकते हैं। उनमें प्रथम है- समय की प्रतिबद्धता, मौन एवं अनुशासनप्रियता। प्रायः बच्चों को बंदर कहा जाता है क्योंकि वह शरारत करने और लड़ने झगड़ने से बाज नहीं आते परन्तु यहाँ के ब्रह्मचारियों को ऋषि कुमार कहा जा सकता है। छोटे-छोटे आठ-दस वर्ष के ब्रह्मचारी ऐसे मौन होकर बैठे रहते हैं मानो तपस्या में लीन हों।

यज्ञ के प्रारम्भ में दीपक प्रज्वलित करके उसे सुंदर आकर्षक कांच से बने दीप घर में यथा स्थान रख दिया जाता है इससे कभी भी दीपक के बुझने की नौबत नहीं आती।

मैंने यह भी देखा कि यज्ञवेदी के चारों ओर आठ चौकियाँ रखी हुई थी। उन पर एक जैसे सुन्दर आसन बिछे हुये थे तथा प्रत्येक चौकी पर एक ही रंग के आठ छोटे-छोटे तौलिए व्यवस्थित ढंग से रखे हुए थे ताकि यज्ञ कर्ता अपने हाथ पोंछ सकें।

मैंने यह भी गौर किया कि यज्ञ की समिधाएँ किसी टोकरी में अव्यस्थित ढंग से रखने के बजाय एक लकड़ी के रैक पर रखी हुई थी और सभी एक जैसी समान आकार की थी।

प्रायः अन्य स्थानों पर कपूर को चम्मच पर रखकर तथा प्रज्वलित करके यज्ञ कुंड में रखा जाता है कई बार अग्निबुझ भी जाती है। पर यहाँ घी से भीगी हुई चौड़ी समिधा पर कपूर रखकर अग्नि प्रज्वलित की जाती है और तब समिधा को यज्ञ कुण्ड में रखा जाता है। कुछ कपूर के टुकड़े पहले ही यज्ञ कुंड में रख दिए जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है की अग्नि अच्छी तरह प्रज्वलित हो जाती है और बुझने की नौबत नहीं आती।

सायंकालीन बेला में हवन संक्षेप में तथा संध्या विस्तार पूर्वक की जाती है। संध्या के कुछ मंत्रों

का भावार्थ भी प्रकट किया जाता है। प्राणायाम भी किया जाता है। साधकों का ध्यान केंद्रित करने के लिए पूर्ण तन्मयता और आनन्द हेतु अन्य लाइटें बन्द कर दी जाती हैं तथा मंच की एक ही लाइट जलती रहती है।

हवन में प्रार्थनोपासना (विश्वानि देव....) मंत्रों के प्रारम्भ में ही ओम् का उच्चारण किया जाता है। बीच के मंत्रों में नहीं।

गुरुकुलीय आर्ष शिक्षा पद्धति- जैसे अन्य शिक्षण संस्थानों मे परीक्षा पद्धति होती है। विद्यार्थी परीक्षा देकर बड़ी कक्षा में जाता है पर यहाँ ऐसा नहीं होता। विद्यार्थी, घर से अक्षर ज्ञान प्राप्त करके यहाँ आता है और ब्रह्मचर्य का पालन करके प्रारम्भ अष्टाध्यायी के सूत्रों को रटता है। इसी को आप इसकी पहली कक्षा कह सकते हैं। इसके बाद विदुर नीति, मनुस्मृति तथा ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि वैदिक ग्रन्थों का अध्ययन करता है। उच्च ज्ञान की दक्षता प्राप्त करने के लिए उपनिषद, दर्शन, वेदादि का ज्ञान आवश्यक होता है। वास्तव में इस आर्ष शिक्षा पद्धति का उद्देश्य व्यक्ति के आध्यात्मिक जीवन को उन्नत करना है न कि भौतिक जीवन को संवारना । इस आश्रम में संन्यासी और वानप्रस्थी तो अध्यापन कार्य करते ही हैं साथ में गृहस्थी भी ब्रह्मचारियों को पढ़ाते हैं।

आवास व्यवस्था - आश्रम में अनेक सुसज्जित सुविधा सम्पन्न कक्ष हैं जिन्हें कुटिया भी कह सकते हैं। बाहर से पधारने वाले अतिथियों के लिये एकदिन का किराया लगभग डेढ़ हजार रुपये हैं। विद्वानों से किराया नहीं लिया जाता है। इसके अन्तर्गत प्रातःकाल नाश्ता, दोनों समय भोजन एवं दोनों समय दूध की व्यवस्था होती है। ब्रह्मचारी, आचार्य, संन्यासी, अतिथि आदि सबको एक जैसा भोजन मिला है। चारों तरफ फैले हुए खेतों से फल एवं सब्जियाँ भी उपलब्ध हो जाती हैं। भवन निर्माण कार्य अनवरत चलता रहता है।

प्रायः प्रत्येक कक्ष में यज्ञ करते हुए योगिराज श्री कृष्ण का चित्र तथा महर्षि दयानन्द एवं साधना लीन स्वामी सत्यपति के चित्र कक्ष की शोभा को बढ़ाते हैं तथा भक्ति एवं कृतज्ञता के भाव को प्रकट करते हैं। प्रायः विभिन्न स्थानों पर यह आदर्श वाक्य लिखा हुआ दृष्टिगत होता है- **'तमेव विद्वान न विभेति कदाचन'** अर्थात उस परम सत्ता को जानकर साधक मृत्यु के भय से मुक्त हो जाता है।

भजन गायन एवं परिभ्रमण- विशाल भवन के तृतीय तल (तीसरी मंजिल) पर तो हवन एवं प्रवचन होता है परन्तु द्वितीय तल (दूसरी मंजिल) का सदुपयोग गोष्ठी, संवाद, आयोजन स्वास्थ्य मनोरंजन आदि के निमित्त किया जाता है। यह गोलाकार है। इसमें परिक्रमा कर सकते हैं। यहाँ सायंकाल में भोजन के उपरान्त कनिष्ठ-वरिष्ठ सभी ब्रह्मचारी आधे घंटे श्लोक एवं भजन गाते हुये एक साथ पंक्तिबद्ध होकर घूमते है। ऐसा करने से उनका भोजन भी पच जाता है और भजन भी हो जाता है। यह भी उल्लेखनीय है कि इसी मंजिल की दीवारों पर मंत्र एवं श्लोक अंकित हैं- **तनूपा अग्नेऽसि तन्वं मे देहि, उदबुध्वास्वाग्ने प्रतिजागृहि** आदि। इसी प्रकार दीवारों पर डिब्बे रखने के खाने (स्थान) बने हुए हैं। उन डिब्बों में यज्ञ में प्रयुक्त होने वाली औषधियाँ या जड़ी-बूटियाँ रखी गई हैं- शतावरी,

अश्वगंधा, जायफल, भोजपत्र आदि। साथ ही मिट्टी से बने हुए हवन कुण्ड, आचमन पात्र, स्रुवा (चम्मच) आदि कक्ष की शोभा को बढ़ाते हैं।

अनवरत बारह घंटे हवन- आश्रम के चिकित्सालय के समीप एक ऐसी स्थली है जहाँ सायंकाल तक निरन्तर हवन एवं मंत्रोच्चारण होता रहता है। टेप रिकार्डर से मंत्रोच्चारण होता है तथा चिकित्सालय में आने वाले मरीज तथा अन्य यात्री हवनकुंड में आहुति देते रहते हैं। एक व्यक्ति आहुति देकर उठता है तो दूसरा व्यक्ति उसके स्थान पर बैठ जाता है। घी और सामग्री वहीं पर रखी होती है। बाहर एक रजिस्टर रखा रहता है जिसमें आहुति देने वाले के नाम अंकित किये जाते हैं। आहुति देने से मरीजों को आध्यात्मिक सुख-शान्ति की अनुभूति होती है- इलाज और यज्ञ, दोनों साथ-साथ।

जहाँ श्रम है वहाँ आश्रम है। यह बात इस आश्रम पूरी तरह घटित होती है। यहाँ श्रम है साधना, स्वाध्याय और राष्ट्र निर्माण के लिये। मैंने जो देखा, परखा वह लिख दिया। यदि लिखते हुए मेरी कलम बहक गई हो, अवांछित लिख दिया हो तो खेद प्रकट करता हूँ। यहाँ समस्त संन्यस्त वृन्द, आचार्यगण व ब्रह्मचारी सभी प्रणम्य है। मैं उनके निःस्वार्थ तप त्याग को प्रणाम करता हूँ।

-230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम
ज्वालापुर, हरिद्वार
मो0 9639149995

हितोपदेश का संदेश

उद्यमेन हि सिध्यन्ति कार्याणि न मनोरथैः ।

कार्य उद्यम से सिद्ध होते हैं, मनोरथों से नहीं।।

ज्ञानं भारः क्रियां विना।

आचरण के विना ज्ञान केवल भार होता है।

मेरा दर्द न जाने कोय

जेल डायरी के कुछ बीमार पन्ने

अनकहा सच

- कार्यालयी प्रस्तुति

"तुम्हारे साथ अन्याय हुआ है।" यह वाक्य मैंने तब कहा कि जब मैंने कारागार में कृष्ण मोहन की पिछली आपबीती सुनी। वह नियमित रूप से मेरी संस्कृत कक्षा में आता है। जब मैंने उससे कारागार में आने का कारण पूछा तो उसने बताया कि मेरे एक साथी ने किसी की हत्या कर दी थी। मैं उस समय उसके साथ था, इसलिए मुझे भी जेल हो गई। उसने मुझे बताया कि मैं पूजा पाठ, धर्म-कर्म आदि पर विश्वास नहीं करता था लेकिन दोस्त पंकज ने मुझ से कहा कि एक बार तू गुरुजी की कक्षा में आजा। यदि अच्छा न लगे तो दोबारा मत आना। उसके कहने से मैं आ गया और उसके बाद आपकी कक्षा में इतना अच्छा लगा कि मैं नियमित रूप से आ रहा हूँ।

एक दिन कृष्णमोहन ने मुझसे कहा कि सर मेरी आँख कमजोर हो गई है, धुँधला दीखता है, पढ़ने में दिक्कत होती है। अगले दिन मैं उसके लिए आँखों की दवा 'आईटोन' ले आया। उसके प्रयोग से उसकी आँखें ठीक होने लगीं। धीरे-धीरे वह मेरे निकट आने लगा। एक दिन जब सब बन्दी चाय पीने नीचे के कमरे में चले गए तो कृष्ण मोहन नहीं गया। मेरे पूछने पर उसने बताया कि मैंने चाय पीनी छोड़ दी है। जब हम दोनों अकेले रह गए तो कृष्ण मोहन ने कहा कि गुरुजी जो कुछ कहानी (आत्मकथा) मैंने आपको सुनाई, वह अधूरी थी। पूरी कहानी मैं आपको आज सुना रहा हूँ।

मैं चौंका, मैंने कहा, 'तुमने तो मुझे बताया कि किसी की हत्या के समय मैं अपने दोस्त के साथ था, इसलिए मुझे भी जेल हो गई।'

'हाँ, यह सच है परन्तु अब जो बताने जा रहा हूँ, वह उससे भी बड़ा सच है। यह सच मैं पहली बार आपको बता रहा हूँ। यह अब तक मेरे दिल में दफन था।'

लेकिन इतने दिनों बाद मुझे क्यों सुना रहे हो?'

'मुझे अपने पिछले दुष्कर्मों और पापों का प्रायश्चित करना ही चाहिए। इसलिए मैं आपके सामने अपने सारे गुनाहों को कबूल करके प्रायश्चित करना चाहता हूँ और अगले जीवन को भी सुधरना चाहता हूँ'।'

'तो सुनाओ, अपनी कहानी।

'गुरुजी, मैं बचपन से ही शरारती और बिगड़ैल था। कुछ पिछले जन्म के बुरे संस्कार रहे होंगे। चौदह-पन्द्रह साल की उम्र में ही संगति बिगड़ने के कारण मैं हमेशा चाकू साथ में रखता था और किसी को भी मारने के लिए तैयार रहता था। एक बार दो छोकरों ने किसी बात पर मुझे गाली दे दी, फिर क्या था मैं अपना विवेक खो बैठा। मैंने चाकू लेकर उनका पीछा किया और एक को पकड़ लिया। मैंने चाकू मार-मार कर उसे नीचे गिरा दिया, वह तड़पने लगा। फिर भी मेरा क्रोध शान्त नहीं हुआ।

मैंने फिर दूसरे छोकरे का पीछा किया। वह भी डर कर लड़खड़ा गया और जमीन पर गिर पड़ा। मैंने उसे भी चाकू से गोद दिया। दोनों तड़पते हुए मर गए। मुझे किसी ने भी नहीं देखा और मैं वहाँ से भाग निकला।'

'यह तो तुमने बहुत बुरा किया। एक साथ दो-दो हत्याएँ। तुम्हें तो ईश्वर माफ नहीं करेगा। 'मेरे हृदय से आह सी निकली।

''गुरुजी, मेरी कहानी यहीं खत्म नहीं हुई। जब मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ तो आपके सामने कुछ नहीं छिपाऊँगा। काफी समय बीत गया। मेरे घर में एक गरीब नेपाली मजदूर रहता था। उसकी गरीबी, मजबूरी और सीधेपन का फायदा उठाकर पड़ोस का बिगड़ैल छोकरा उसकी लड़की को फुसला कर कहीं दूर झाड़ियों में ले गया और उसके साथ बलात्कार किया। जब वह लड़की रोती हुई घर आई और उसने सारी बात बताई तो मेरा खून खौलने लगा। मैं चाकू लेकर उसे ढूँढने लगा। उसको भी मेरे बारे में पता चल गया। वह दूर जंगल में छिप गया। मैंने आखिर उसको ढूँढ निकाला और वहीं उसका काम तमाम कर दिया।''

'गुरुजी, यही था मेरी अधूरी कहानी का दूसरा भाग। अब मैं आपको सब कुछ बता कर हल्का हो गया हूँ। अब मुझे फांसी पर लटका दिया जाय तो दुःख नहीं होगा। यह मेरा प्रायश्चित ही होगा।' इतना कह कर कृष्णमोहन ने नजरें झुका लीं।'

मैं सोचने लगा, आज कृष्ण मोहन ने यह अनकहा सच कैसे उगल दिया। विधि का विधान देखिये, कृष्ण मोहन ने तीन-तीन हत्याएँ कीं, पर पकड़ा नहीं गया। पर ऐसे केस में पकड़ा गया, जहाँ वह हत्यारा नहीं था। फिर भी उसे कोई शिकायत नहीं है। है तो वह हत्यारा ही, इस केस में नहीं तो क्या, पिछले तीन केसों में तो है। इतना अवश्य है कि इस केस की फाइल कारागार में है तो पिछले तीन केसों के फाइल परमात्मा के दरवार में है।

यह संभव है कि इस केस में कृष्णमोहन कुछ वर्षों बाद कारागार से छूट जाये परन्तु पिछले तीन केसों में परमात्मा की अदालत से बरी होने में उसे जन्म-जन्मान्तर लग सकते हैं। आज कृष्ण मोहन रो-रोकर, आँसू बहाकर भक्ति, उपासना, साधना का सहारा लेकर परमात्मा से अपील कर रहा है कि मेरे गुनाहों को माफ कर दो। लेकिन परमात्मा का दण्ड विधान कहता है:

'अवश्यमेव भोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।'

अर्थात् शुभ-अशुभ कर्मों का दंड अवश्य भोगना पड़ता है।

साक्षात्कार कर्ता- डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा
230, आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर
मो0 9639149995

परलोक का गणित

आध्यात्मिक प्रश्नोत्तरी

(गंताक से आगे)

- ज्ञानेश्वरार्य

प्र.105. एक सृष्टि (संसार) की आयु कितनी होती है ?

उत्तर: एक सृष्टि (संसार) की आयु चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष होती है।

प्र.106. सृष्टि (संसार) की आयु किनसे मापी जाती है व उनकी आयु कितनी होती है।

उत्तर: सृष्टि (संसार) की आयु सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग से मापी जाती है। इनकी आयु निम्नलिखित है -

युग	-	वर्ष
सत्युग	-	17,28,000 वर्ष
त्रेतायुग	-	12,96,000 वर्ष
द्वापरयुग	-	8,64,000 वर्ष
कलियुग	-	4,32,000 वर्ष

एक चतुर्युगी = 43,20,000 (तिरालिस लाख बीस हजार वर्ष)

प्र.107. एक सृष्टि में कुल कितनी चतुर्युगी होती है?

उत्तर: एक सृष्टि में कुल एक हजार चतुर्युगी होती हैं।

प्र.108. एक सृष्टि में कितने मन्वन्तर होते हैं?

उत्तर: एक सृष्टि में चौदह मन्वन्तर होते हैं।

प्र.109. वर्तमान में कौन सा मन्वन्तर चल रहा है व इसका नाम क्या है?

उत्तर: वर्तमान में सातवाँ मन्वन्तर चल रहा है, इसका नाम वैवस्वत मन्वन्तर है।

प्र.110. एक मन्वन्तर में कितनी चतुर्युगी होती है व वर्तमान में कौन सी चतुर्युगी चल रही है?

उत्तर: एक मन्वन्तर में इकहत्तर चतुर्युगी होती हैं तथा वर्तमान में अट्ठाइसवीं चतुर्युगी चल रही है।

प्र.111. वर्तमान कलियुग के कितने वर्ष बीत चुके हैं?

उत्तर: विक्रम संवत् 2064 (ई.स. 2008) में वर्तमान कलियुग के 5107 वर्ष बीत चुके हैं।

प्र.112. आगामी सत्युग का आरंभ कितने वर्षों के बाद होगा?

उत्तर: आगामी सत्युग का आरंभ 4,26,892 वर्षों के बाद होगा।

प्र.113. सृष्टि का नववर्ष किस दिन बदलता है?

उत्तर: सृष्टि का नववर्ष चौत्र सुदी प्रतिपदा (प्रथमा) के दिन बदलता है।

प्र.114. वर्तमान सृष्टि की आयु कितनी हो चुकी है?

उत्तर: वर्तमान सृष्टि की आयु 1 अरब 96 करोड़, 8 लाख, 53 हजार 107 वर्ष हो चुकी है।

(विक्रम संवत् 2064, ई.स. 2008 में)

प्र.115. क्या काल के कारण धर्म-अधर्म होते हैं जैसे कि सुनने में आता है कलियुग में पाप कर्म बढ़ जाते हैं?

उत्तर: नहीं, काल के कारण धर्म-अधर्म नहीं होते हैं। प्रत्येक काल में धर्म और अधर्म दोनों की प्रवृत्तियाँ चलती हैं।

प्र.116. सृष्टि (संसार) के प्रारम्भ में मनुष्यों को किसने उत्पन्न किया और कैसे उत्पन्न किया?

उत्तर: सृष्टि (संसार) के प्रारम्भ में ईश्वर ने पृथ्वी के कणों से रज-वीर्य आदि धातु बनाई उसे मिलाकर पञ्चभौतिक अर्थात् पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन द्रव्यों से शरीर बनाकर, धरती के अन्दर से हजारों की संख्या में नवयुवक और नवयुवतियों को एक साथ उत्पन्न किया, जो शरीर से तो बलिष्ठ थे, किन्तु उनको बहुत ही कम ज्ञान था।

प्र.117. फिर उन मनुष्यों को ज्ञान कैसे हुआ?

उत्तर: ईश्वर ने जो हजारों की संख्या में मनुष्यों को उत्पन्न किया था, उनमें से सर्वाधिक पवित्रात्माएँ जो-जो थीं, उनको चुना और उनसे समाधि लगवा करके ईश्वर ने उनको ज्ञान दिया । वहीं से गुरु परम्परा चली और सब मनुष्यों को ज्ञान हुआ।

(पराविद्या रचना से साभार)

आँसू और मुस्कान

कपोलों के ढलान से नीचे उतरती हुई आँख की अश्रुधार को देखकर अधरों के कपाट खोलकर मुस्कान ने मनुष्य वाणी में अश्रुधार से पूछा-

"बहिन, कैसे आना हुआ ?"

"मेरी बहिना! हम दोनों ईश्वर के प्रतिनिधि हैं। मैं वर्षा ऋतु का प्रतिनिधित्व करती हूँ तो तुम ग्रीष्म ऋतु का। मैं बीज को सींचती हूँ तो तुम उसे पका कर पुरिपुष्ट करती हो।"

"तो मैं क्या करूँ ?" मुस्कान ने पूछा ।

"मानव शरीर भी एक खेत है। इसमें भी संस्कारों के बीज होते हैं। मैं इसे साधना के आँसुओं से अभिसिंचित कर दूँगी और तुम फलप्राप्ति के रूप में इसे अपनी मुस्कान से परिपुष्ट कर देना। इसी में आँसू और मुस्कान के रूप में हमारे जीवन की सार्थकता है।" आँसू ने कहा।

"धन्यवाद आपका।" मुस्कान ने अधर के द्वार बन्द करते हुए कहा।

(कार्यालय प्रस्तुति)

कर्मयोगी महात्मा नारायण स्वामी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

कीर्तिशेष - डॉ0 देव सत्यार्थी (पूर्व नाम डॉ0 विष्णुदेव)

''आर्य वानप्रस्थाश्रम के जन्म की भावभूमि''

हिमाद्रि के अभ्रंकश शिखरों से प्रवाहित सहस्रों जलधाराओं के प्रपात तथा निर्झरी की कल-कल निनाद से भरी अजस्र पीयूष रेखाओं से समवेत भागीरथी के उपकंठों पर सद्यस्नाता, गैरीक वस्त्रों में आवेष्टित, कटि प्रदेश पर खचित मौञ्जमेखला से युक्त साधिका की मानिन्द उषा कालीन क्षितिज से उतरती ताम्रवर्णी रश्मि रेखाओं के स्थासकों से प्रतिबिम्बित दीवारों को देखकर अज्ञात यात्रियों के कदम हठात् आश्रम के सिंहद्वार पर थमकर रह जाते हैं। ब्राह्म मुहूर्त की शीतल समीर की लोरियों से स्वस्थ चित्त साधकों की चेतना, मरीचिमाली कोमल किरणों के स्पर्श से मुस्काते फूलों की मानिन्द यज्ञशाला की धूम्रलेखाओं से उठती सुगन्धि से सराबोर आश्रम का सन्निवेष जीवन्त हो उठता है।

प्रात:कालीन प्रथम सवन सत्र से लेकर सांयकालीन सत्र तक साधकों की गतिविधि स्वयं ही आश्रम को परिभाषित करती है। अहर्निश की यही गत्यात्मकता अतीत की ध्वनि, तथा सात दशकों के कालखण्ड की यात्रा के ऐतिहासिक पृष्ठों पर अंकित प्रस्तावना है और उपसंहार के अक्षर भी हैं। लगभग पचहत्तर वर्ष पूर्व महर्षि दयानन्द के पावन संदेश के पाथेय को अपने अन्तर्देश में समेटे एक युवा सन्त गंगा के कगारों पर आ बैठा था। इससे भी लगभग दो दशक पूर्व काषाय वस्त्रों में लिपटा हाथ में कमण्डलु और दूसरे हाथ में पलाश दंड लिए एक और कर्मयोगी सन्त सघन वृक्ष की सान्द्र छाया में पड़े शिलाखण्ड पर बैठकर भाल प्रदेश पर उभरते स्वेद बिन्दुओं को रौंदते हुए अपने अधरों से कुछ फुसफुसाया था। हे पतित पावनी ! तेरी गत्यात्मकता से मैं अभिभूत हो उठा हूँ। अपने पुरोधा महर्षि के संदेशों को दामन में बांधकर तेरे पुलिनों पर प्रण करके आया हूँ: **''कार्य वा साधयेयं देहं वा पातयेयम्।''**

हमारे युगपुरुष महर्षि का आदेश था कि समग्र राष्ट्र को आर्य संस्कृति का संवाहक बनाना होगा। आर्य पुरोधा पराधीनता कब स्वीकार करता है। पराधीनता के नागपाश में जकड़ा देश दरिद्र माना जाता है। वैदिक चिन्तन से उद्भूत क्रान्ति के स्फुलिंगों से मानव समाज एवं राष्ट्र के दारिद्र्य का अन्त हो सकता है। वह कालजयी चिन्तक अनन्त यात्रा के प्रयाण कालीन क्षणों में यही संदेश देकर कैवल्य में लीन हुआ था- **''मात गंगे, मैं उन अक्षरों का जीवन्त रूप हूं।** मैं आज तेरे कंगारों पर शपथ लेकर आया हूं। शायद यही मेरी नियति है कि मैं तेरी गतिमान धारा को आत्मसात् कर अपने प्राणों की अर्घ्य रेखा बना लूं। यही गत्यात्मकता आर्यशक्ति की स्वत: स्फूर्त चेतना है, जो मुझे तेरे इन पावन पुलिनों पर टकराकर अपने गन्तव्य की ओर ले जाती हुई दिखाई दे रही है।''

नियति की काल गति किसी अज्ञात निर्देश से संचालित होकर जीवन की अमृत चेतना बन जाती है। स्वामी श्रद्धानन्द के मानस से उद्‌भूत चिन्तन धारा ने गंगा के एक पार्श्व पर कल्प तरु का आरोपण कर ऋषि ऋण से उऋण होकर अव्यक्त स्वरों को जीवन्त कर दिया। तरुणाई की ऊर्जस्वित धारा से राष्ट्र जागरण का दावानल फूट पड़े तो महर्षि की कल्पना का सुनहरा मानचित्र समूचे देश पर रेखांकित हो जायेगा। निःसन्देह स्वामी श्रद्धानन्द के बलिदान ने महात्मा नारायण स्वामी के मानस को अन्दर तक झकझोरा था। काषाय वस्त्रों में लिपटे कर्मयोगी ने आकाश की ओर मुँह उठाकर अतीन्द्रिय लिपि को पढ़ा जिसमें भगीरथी के तटों पर तरुणाई की तपिश महसूस की, तो कभी शीतल मलय के मन्द-२ झोंकों की थपकी की सुखद अनुभूति। साधना की भट्‌टी में स्वयं को कुन्दन बनाकर तपः पूत कर्मयोगी के मानस में चेतना की वैखरी आकार लेकर ठहर सी गई थी। राष्ट्र के मानस को शंकृत करने के लिये यदि मानव के जीवन में आदर्श गार्हस्थ्य के निर्वाह के पश्चात् वानप्रस्थीय जीवन के विराट् भावों से अनुप्राणित आदर्शों का उदय हो जाए तो मानव मात्र का कल्याण सहज रूप में संभव है। सर्वतोमुखी कल्याण की उद्‌भावना विधिवत् ब्रह्मचर्य एवं गार्हस्थ्य के सोपानों से गुजर कर संन्यास के क्षितिज पर पहुंच कर ही संभव है।

आर्य जगत् के विशाल आकाश में ध्रुव नक्षत्र की मानिन्द तेजपुंज सन्त प्रवर नारायण स्वामी का समग्र जीवन, यज्ञाग्नि में समर्पित समिधा के सदृश रहा है। निःसन्देह महर्षि दयानन्द के इस मानस पुत्र को व्यक्तित्व तथा कृतित्व के धर्मकांटे पर रखकर देखना सामान्य कार्य नहीं है। कर्मयोगी नारायण स्वामी के अवदान की फल श्रुति आर्यसमाज की चेतना की गहराई में रची-पची दिखाई देती है। कोई पारखी उस काल खण्ड के पृष्ठों पर अपनी निगाह टिका कर तो देखे।

सृष्टि की धारा अनादि से अनन्त की ओर यात्रा पथ पर गतिमान रही है। कौन रोक पाया है, काल की गति को। इतिहास के चरण कब थम सके हैं। कौन मिटा सका है. अतीत से वर्तमान की रेखा के निशान। वर्तमान के कथा अवसान की यात्रा इतिहास के पन्ने बन जाते हैं, जिसकी प्रति ध्वनि भविष्य के स्वरों की मनोहारी सरगम बनकर गूंजने लगती हैं।

इतिहास का रथचक्र जिस राज मार्ग से गुजरता है, उस राज पथ पर कल्पनाओं की पगडण्डियां नहीं जुड़ पाती। इतिहास के फौलादी कदम किसी सघन वृक्ष की छाया में पलभर को भी नहीं थमते। बासन्ती बयार हो, या ज्वालामुखी के लावों को चीरकर निकले तूफानी अंधड़ हों, कालजयी पुरुष अपने गन्तव्य की ओर बढ़ते जाते हैं।

कर्मयोगी किसी प्रासाद तथा शीश महलों में जिन्दगी के लमहे नहीं गुजारते, ना ही किसी के अभिसार की कोमल बाहों में श्वास लेते हैं। कर्मयोगी जनों की धमनियों में रक्त की धारा लक्ष्य के

शिखरों पर अपने समर्पण की तलाश करती है। प्रज्ञावन्त कर्मठ मनीषियों की आंखें किसी काई भरे तालाब की सीढ़ियों पर बैठ कर ठहरे पानी पर नहीं टिक सकीं, उनके चरणों के निशानों से शहादत की तपिश संवेदना की निश्छलता, तथा लक्ष्य को बेंधने के लिए बेताब रहती है।

चेतनात्मक सृष्टि का समूचा वितान, कर्मयोगी सन्तों, मनीषियों, प्रखर प्रज्ञावन्तों के दिव्य अवदान से भरा हुआ है। भावी पीढ़ियों के कदम उन्हीं आहुत चरणों के निशानों पर अपनी भाव धारा के अर्घ्य चढ़ाकर लक्ष्य तक पहुंचे हैं। महर्षि दयानन्द के कदमों की आहट सन्त नारायण स्वामी के कार्यकलापों पर स्पष्ट झलकती है। महर्षि ने ब्रिटिश सत्ता के नागपाश में जकड़े भारत की सुषुप्त चेतना को जगाने के लिए अपने जीवन को चिराग के स्नेह में डूबी बाती की मानिन्द जलाकर, भारत को आलोक प्रदान किया। उसी चिराग की रोशनी में जिन आहुत सपूतों ने अपने कदम बढ़ाए उनमें कर्मयोगी महात्मा नारायण स्वामी एक दमदमाते नक्षत्र की भांति आर्यसमाज के जीवन्त हस्ताक्षर है।

सन् 1911 ई० में ब्रिटिश सत्ता के ताबूत में कील ठोकने वाले महान् क्रान्तदर्शी मुरसान (जि. हाथरस) नरेश राजा महेन्द्र प्रताप की महात्मा नारायण स्वामी से भेंट वृन्दावन में हुई थी।

क्रान्ति के महान् सूत्रधार राजा साहब की भेंट प्रेम महाविद्यालय की ऐतिहासिक इमारत के साये में हुई थी। वस्तुतः दो कर्मयोगी प्रज्ञा पुरुषों की भेंट उस काल खण्ड की अमिट लिपि में इतिहास के पन्नों में अंकित है। राजा महेन्द्र प्रताप ने स्वामी जी को अपनी बाहुओं में लपेटकर कहा था ''युवक सन्त! आप महर्षि दयानन्द के क्रान्ति यज्ञ की पावन समिधा के रूप में हैं। **राष्ट्र की अवधारणा के पुरोधा महर्षि दयानन्द के लक्ष्य को अपने दामन में बांधकर निकले हैं।** मैं भी उसी गन्तव्य का राही हूं, लीजिए मेरी भेंट रूप यह 15 सौ एकड़ धरती आपके हवाले है, आप गुरुकुल की स्थापना कर महर्षि की कल्पना को साकार करें। मैं आपके संकल्प को देखकर अभिभूत हूँ। मेरे राज्य की आय से आप प्रारंभिक कार्य निर्बाध रूप से बढ़ाकर संस्था को साकार रूप दीजिए। मेरी भेंट शायद आपसे न भी हो सके। शीघ्र ही निर्वासित हो मैं देश से दूर आजादी की खोज में कदम बढ़ा रहा हूं। देश की आजादी के लिए समर्पित मेरा जीवन कभी भी बुझते चिराग की मानिन्द गुल भी हो सकता है। आप वृन्दावन की पावन मिट्टी से आजादी के दीवाने युवक पैदा करें ताकि यह मशाल जलती रहे।''

ध्यातव्य है कि प्रज्ञावन्त कर्मयोगी दर्शनानन्द जी ने सिकन्दराबाद में जिस गुरुकुल की स्थापना की थी वही फर्रुखाबाद तथा स्वामी नारायण के नेतृत्व में वृन्दावन लाया गया था, जिसकी चर्चा आगे की जाएगी।

बात यहीं समाप्त नहीं होती। महर्षि दयानन्द के इस मानस पुत्र के जीवन की भाव धारा इतिहास के सुनहरे पृष्ठ है, जिन पर वर्तमान से लेकर भावी पीढ़ी तक सुनहरी रेखा दिखाई देती है।

गर्भजन्य संस्कारों की पृष्ठभूमि लेकर जन्मे शिशुओं के द्वारा रेखांकित इतिहास की इबारत अतीत के पृष्ठों पर आज भी झलक रही है।

वैभव के सुनहरे बिछौने पर नींद की खुमारी में डूबा सिद्धार्थ राजकुमार पीड़ित मानव की कराह से संतप्त होकर अमावस की स्याह रात में महलों की दहलीज लांघ कर कांटों भरी पगडंडी पर चलकर तथागत के रूप में दो हजार वर्ष की स्मृतियां समेटे इतिहास का चमकीला अध्याय बन गया। इतिहास के पन्नों को चीर गूंजने वाली इबारत बता रही है, कि मानवीय पीड़ा से जन्मे संवेदनशील अध्यायों से गुजर कर तूफानी झकोरों ने राष्ट्रों के कलेवर को ही बदल कर किस तरह के नवीन आख्यान लिखे हैं।

अनिन्द्य सुन्दरी यशोधरा, सद्योजात शिशु राहुल के भोले चेहरे को देखते हुए प्रसाद की दहलीज पर एक क्षण ठिठक कर राजसी विलास के आवरण को एक झटके में फेंककर तथागत किस तरह अनन्त की गहराई में डूब गया। सदियों के इतिहास के पन्ने, साधना के वटवृक्ष की छाया में पले गैरिक वस्त्रों में लिपटे उस साधु की कहानी कहते प्रतीत होते हैं।. मानवता के परित्राण के लिए शहादत की कालजयी चेतना राष्ट्र की धमनियों में आज तक स्पन्दित हो रही है। उसी कालातीत समाधि के चरणों में सम्राटों के गर्वीले मुकुट और जल्लादों की तेगें मौथरी पड़ गईं।

मूलशंकर से दयानन्द बनने का इतिहास हलाहल के घूंटों, काँटों की चुभन, पत्थरों की चोटों से बहने वाले गाढ़े लहू की धारा से भरा हुआ है। शहादत की वह कालजयी रेखा समय की धूलभरी परतों में भी दबी नहीं रह सकी।

पंजाब की धरती पर जन्मा तलवन ग्राम की मिट्टी में खेला मुंशीराम शिशु अंधी गलियों में भटक कर भी महर्षि के कुछ अक्षरों का आहार पाकर हाथ में कमण्डलु और गैरिक वस्त्रों में लिपटे मस्जिद की फसीलों पर संगीनों के सामने सीना ताने शहादत के लिए खड़े श्रद्धानन्द के रूप में इतिहास के पन्नों में जीवन्त है।

कर्मयोगियों की कुर्बानी के इतिहास काली रोशनाई से नहीं, शहादत के गाढ़े लहू से लिखे जाते हैं। स्वामी श्रद्धानन्द का बलिदान, महर्षि की शहादत के इतिहास का उपसंहार था, जो महात्मा नारायण स्वामी की अश्रान्त यात्रा का पावन पाथेय बन गया। सदियों के काल चक्र पर अंकित सन्तों के अवदान के अक्षर राष्ट्र के जीवन में प्राणवन्त होकर उभरने लगते हैं। महर्षि दयानन्द के जीवन की ऊर्ध्वश्वासों से निकले अक्षर नास्तिक मानस को आस्था के कणों में आधान कर जीवन का अर्थ समझा गये। महर्षि की एक झलक मात्र कैशौर्य के मानस को नारायण स्वामी के रूप में निष्काम कर्मयोगी बना गयी।

17 दिसम्बर 1911 ई. में वृन्दावन की तीर्थभूमि पर गुरुकुल की स्थापना के साथ ही

पौराणिक अंधविश्वास के खण्डहरों में कंपकंपी पैदा होने लगी, वृन्दावन के रासलीलाधारियों में खलबली होने लगी। गोपियों की बस्ती में आर्यसमाज का चिराग जलाने वाला कौन है? गरम हवा का झौंका वृन्दावन की गलियों से गुजर गया। देखते ही देखते पण्डों और गुसाइयों के काफिले नारायण स्वामी पर पत्थरों की बौछार करने लगे। खून के प्यासे पण्डों को समझाए भी तो कौन? स्वामी जी ने तत्कालीन मथुरा के कलेक्टर मि. डैम्पियर को सूचित कर अपनी स्थिति से अवगत कराया भर था कि डैम्पियर तुरन्त वृन्दावन जाकर स्वामी जी से मिला और बोला कि मि. स्वामी आप मुझे अथवा पुलिस को इन मिस्क्रीएन्ट्स के खिलाफ रिपोर्ट दे दें। मैं इन पण्डों को सख्त सजा देने की कार्यवाही कर दूंगा। इन सभी को जेल भेजकर आपके काम में बाधा न आए, इसका पुख्ता इन्तजाम भी कर दूंगा। स्वामी जी के सर पर पड़े पत्थर के जख्मों को देखकर डैम्पियर के माथे पर बल पड़ने लगे। डैम्पियर के कहने पर स्वामी जी ने उत्तर देते हुए कहा-''**कलेक्टर साहब, मेरे ऋषि दयानन्द ने प्राण लेने वाले को भी प्राणदान दिया था। जिन्दगी लेने वाले को भी जिन्दगी देने वाले ऋषि का मैं अपने ऊपर ऋण लिए घूम रहा हूँ,** मैं इन पण्डों के विरुद्ध पुलिस रिपोर्ट देकर जेल भेजने की हिमाकत कैसे कर सकता हूँ।'' इतना सुनना था कि डैम्पियर ने स्वामी जी को सैल्यूट कर कहा, आप भद्र पुरुष हैं, मैं बिना रिपोर्ट के भी इन का इन्तजाम करूंगा। आप निश्चिन्त होकर अपनी संस्था का काम आगे बढ़ायें। दूसरे दिन ही पुलिस का संरक्षण स्वामी जी की सुरक्षा में लगा दिया गया। महर्षि के शब्दों ने ही स्वामी जी के जीवन को मनसा वाचा-कर्मणा सन्त की कोटि में जा बैठाया।

आइये, हम उस कर्मयोगी के अन्तर्देशों में झांककर देखें-

संवत् 1922 वि. की माघ सुदी वसंत पंचमी (तिथि) के शुभ मुहुर्त में महर्षि दयानन्द के मानसपुत्र का जन्म मुंशी नारायण प्रसाद के रूप में हुआ था। स्वामी जी के लेखानुसार उनका जन्मस्थान अलीगढ़ था। स्वामी जी के पिता सरकारी कर्मचारी थे। स्वामी जी ने अपने आलेख में यह भी लिखा है क़ि पितामह तथा पूर्वजों का मूल स्थान जौनपुर जनपद का एक छोटा सा ग्राम शृंगारपुर था। महात्मा जी के पितामह तथा प्रपितामह काशीनरेश महाराज चेतसिंह के राज्य में विशिष्ट कार्मिक पुरुष थे।

यह ज्ञातव्य है कि 1857 के क्रान्तिकाल में लॉर्ड वारिन हेस्टिंग्स तथा लार्ड डलहौजी के निर्देश पर अवध के नबाब वाजिद अली शाह के साथ, नबाब के परममित्र काशी नरेश महाराज चेत सिंह को ईस्ट इंडिया की कारगुजारियों से कैद कर जेल में डाल दिया गया था। 1857 से पूर्व इन दोनों राष्ट्रभक्त नरेशों ने बरतानिया हुकूमत के खिलाफ क्रान्ति की मशाल हाथ में लेकर सत्ता को उखाड़ फेंकने के लिए युद्ध की भी घोषणा कर दी थी। इस सन्दर्भ में उस गुजरी दास्तां के पृष्ठ खोलना न तो सामयिक है और ना ही प्रासंगिक है। महात्मा नारायण स्वामी किशोरवय में ही थे कि 1886 ई. में पिता जी का देहावसान हो गया। शिक्षा तथा विद्याध्ययन की तत्कालीन परम्परा के अनुसार किशोर

नारायण प्रसाद की शिक्षा भी एक मकतब में फारसी के माध्यम से हुई थी। जीवन के निर्वाह के लिए इतनी शिक्षा पर्याप्त नहीं थी, अंग्रेजी शिक्षा पाना भी अनिवार्य था, अतः मैट्रिक पास कर कालान्तर में मुरादाबाद में कलेक्टर के कार्यालय में लिपिक वर्ग में नौकरी प्राप्त कर जीवन का कार्य चलना प्रारम्भ हुआ। सामान्य जीवन के दौर में ही मुंशी नारायण प्रसाद का विवाह भी हो गया।

कर्मयोगी जनों के कदम रुकते नहीं। मुरादाबाद में आर्य समाज के संपर्क में आकर नारायण प्रसाद के मानसिक धरातल पर वैचारिक उथल-पुथल प्रारम्भ होने लगी। स्वाध्यायशील युवक नारायण प्रसाद स्वामी जी के ग्रन्थों के आलेखों विशेषतः सत्यार्थ प्रकाश जैसे ग्रन्थों के मनन से धार्मिक-सांस्कृतिक चिन्तन के साथ-साथ राष्ट्रीय भावनाओं को गहराई से उतारने लगे। स्वाध्याय का सिलसिला जितना घनीभूत होता गया, उतना ही राष्ट्रधर्म का भावातिरेक परवान चढ़ने लगा।

सत्य तो यह है कि (नारायण स्वामी) मुंशी नारायण प्रसाद ने आर्य समाज की दहलीज पर जैसे ही अपने कदम टिकाए, वैसे ही अन्तर्देश में प्रसुप्त संस्कारों में उथल-पुथल प्रारम्भ हो गई। कर्मयोगी पुरुषों के कदम अव्यक्त आहार को पाकर गन्तव्य की ओर बढ़ने लगते हैं। कहावत भी है, पूत के पपांव पालने में ही दिखाई देने लगते हैं। स्वामी जी ने अपनी स्मृति के पन्नों पर झांकते हुए लिखा है कि मैं कैशोर्य वय में संस्कृत पढ़ने के लिए पाठशाला में गया ही था कि एक दिन पाठशाला में यकायक हलचल होने लगी कि स्वामी दयानन्द नाम के साधु का आज भाषण होने वाला है, वही साधु कुछ लोगों के हुजूम में पाठशाला के सामने से गुजरने वाला है। हम सभी विद्यार्थी पाठशाला के दरवाजे पर खड़े हो गये, स्वामी जी का ओजस्वी मुख मण्डल तथा दमदमाती आभा से भरा मस्तक देखकर सभी की निगाहें ठहर सी गयी थीं। स्वामी जी आगे लिखते हैं, महर्षि के आकर्षक व्यक्तित्व तथा भाल प्रदेश से झांकती भृकुटियों के मध्य एक अजीब आभा मण्डल था, जिसे पुण्डरीक की मानिन्द आंखों की पैनी दृष्टि से देखकर सभी व्यामोहित थे। मैंने अपने संस्कृत क आचार्य से कहा गुरुजी ! स्वामी जी के प्रचवन सुनने के लिए आज्ञा दे दें। बाल सुलभ जिज्ञासा का उस समय अन्त हो गया, जब गुरुजी ने डाँटते हुए कहा, कि यह साधु तो नास्तिक है। इसके भाषण सुनकर तुम्हारे मन पर बुरा असर पड़ेगा। इसलिए तुम लोगों को इस नास्तिक साधु के प्रवचन सुनने की आज्ञा कदापि नहीं दी जा सकती। **वस्तुतः स्वामी जी के दर्शन मात्र से संस्कारों में उथल-पुथल हो जाना भी हमारे जीवन के परिवर्तन की प्रस्तावना ही थी। स्वामी जी ने लिखा है, क्या ही अच्छा होता, में उनके शब्द भी सुन पाता**, दुर्भाग्य कि ऐसा नहीं हो सका। एक सामान्य जिज्ञासु की भांति आर्यसमाज के सान्निध्य में आकर मुंशी नारायण प्रसाद द्वारा सत्यार्थ-प्रकाश, ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका आदि ग्रन्थों का मनोयोग से नित्य अध्ययन करने से कालान्तर में संकीर्ण घटा टोप को चीरकर सूर्य की किरणों की भांति नवीन वैदिक विहान मेरे मानस में उत्तर आया। सामान्य पुरुष से आर्य जगत् को

शिखर पुरुष के रूप में प्रकट हो जाना किसी अतीत की चमकदार रेखा का वर्तमान से समवेत होने जैसा ही था।

महर्षि के अन्तर्देश के अन्तेवासी शिष्य अमर हुतात्मा पं० लेखराम जी, तथा स्वामी श्रद्धानन्द जी के साथ ही पं० धनश्याम शर्मा मिर्जापुरी से नारायण स्वामी का सान्निध्य प्राप्त होना मणि-कांचन सहयोग जैसा ही था।

नारायण स्वामी की अन्तश्चेतना का विराट स्वरूप कतिपय समर्पित आर्यसमाजी व्यक्तियों के सम्पर्क के साथ ही निखर कर सामने आने लगा। सन् 1891 ई० में महात्मा नारायण स्वामी को आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के प्रथम अधिवेशन में सम्मिलित होने का अवसर मिला उक्त काल खण्ड में आर्य प्रतिनिधि सभा उत्तर प्रदेश के मंत्री पं भगवानदीन जी थे। आर्य समाज के प्रचार का कार्य कुछ ही वर्षों के बाद नारायण स्वामी जी के द्वारा प्राय: उत्तरी भारत के अंचलों में संपन्न हुआ।

यक्ष-युधिष्ठिर संवाद

प्रश्न यक्ष के	उत्तर युधिष्ठिर के
प्र01 अकेला कौन विचरण करता है?	1. सूर्य अकेला विचरण करता है।
प्र02 एक बार उत्पन्न होकर पुन: कौन उत्पन्न होता है?	2. चन्द्रमा उत्पन्न होकर पुन: उत्पन्न होता है।
प्र03 शीत की औषधी क्या है?	3. अग्नि शीत की औषधी है।
प्र04 महान आयतन क्या है?	4. पृथ्वी सबसे बड़ा आयतन है।

(महाभारत से साभार)

आश्रम स्थापना दिवस समारोह

30 मार्च 2024 को समस्त साधक-साधिकाओं तथा कर्मचारियों द्वारा आर्य वानप्रस्थ आश्रम, ज्वालापुर का 96वाँ स्थापना दिवस हर्षोल्लास पूर्वक मनाया गया। इस आयोजन में बाहर से पधारे हुए अतिथि भी सम्मिलित हुए। सर्वप्रथम प्रातःकालीन बृहद् यज्ञ आचार्य कृष्ण देव जी के ब्रह्मत्व में सम्पन्न हुआ। यज्ञ के उपरान्त ईश्वर-भक्ति के भजन हुए। स्थापना दिवस की सार्थकता को सिद्ध करते हुए ब्र0 जितेन्द्री आर्या तथा श्री सदानन्द मौर्य ने काव्यात्मक ढंग से महात्मा नारायण स्वामी को श्रद्धा-सुमन भेंट किए।

तदुपरान्त रोजड़ (गुजरात) से पधारे हुए स्वामी विवेकानंद परिव्राजक ने इस अवसर पर सबको शुभकामना देते हुए सत्यार्थ प्रकाश पर अपने सार गर्भित विचार प्रकट किये। उसके पश्चात् आश्रम प्रधान आचार्य डॉ0 रामकृष्ण शास्त्री जी ने उनके पारिवारिकजनों द्वारा भेंट की गई शॉलें ओढ़ा कर आश्रम के साधक-साधिकाओं को सम्मानित किया। स्वयं प्रधान जी ने आश्रम स्थापना दिवस समारोह की उपादेयता सिद्ध करते हुए यह संदेश दिया कि आगामी चार वर्षों में हमारे आश्रम और हमारे व्यक्तित्व में भी अद्‌भुत निखार आ जायेगा। कार्यक्रम का कुशल संचालन डॉ0 शिव कुमार शास्त्री ने किया तथा शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हो गया। इस अवसर पर मध्याह्न भोजन की व्यवस्था आश्रम की ओर से की गई थी।

वार्षिक उत्सव सम्बन्धी सूचना

गत् वर्षों की भाँति इस वर्ष भी 15, 16, 17 और 18 अप्रैल 2024 को आश्रम का वार्षिक उत्सव सम्पन्न होगा। इस अवसर पर आप सब सादर सपरिवार आमंत्रित हैं।

-मंत्री

शुभकामना

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चित् दुःख भाग्भवेत् ॥

समर्पणम्
(सामर्थ्यवान ईश्वर के प्रति)

कार्यालय प्रस्तुति

कौन ?

कौन व्याप्त है इसी व्योम में, भू में जिसका वास है।
किसलय दल में छवि उसीकी, हर कलिका में श्वास है।।
तरुवर और तृणों को देखा, शुष्कों में भी आस है।
पुष्प दलों की दिव्य प्रभा में, मुक्त कंठ का हास है।।

क्यों ?

लतिका नव रूप सजाये क्यों, क्यों अभिनन्दन को सजती ?
टन-टन-टन-टन की ध्वनि पुकारे, मंदिर घंटी क्यों बजती ?
भ्रमरी मधु लेने मिस ही पुष्पों में क्यों जा बसती ?
गंगा को वे चपल तरंगे, किसको छूने को उठतीं ?

कैसे ?

प्रिय मिलन को देह तजें जो, देखे मुनि भी जपते-जपते।
रो उठता हूँ दीप शिखा देख, निर्दोष पतंगा जलते-मरते।।
प्रिय विना ही चकवी देखो, मरती-जाती आहें भरते ।
सिसक उठी है चन्द्र चकोरी, नीर नयन का ढलते-ढलते।।

विकास पुरुष

महात्मा हर प्रकाश जी

स्वामी आत्मबोध सरस्वती
महात्मा आर्य भिक्षु जी